श्री गुरूजी
एक अनौखा नेतृत्व

: लेखक :
मा गो वैद्य

माधव स्मृति न्यास
कर्णावती, भारत.

www.golwalkarguruji.org

Shri Guruji - Ek Anaukha Netrutva
By : M. G. Vaidya

प्रकाशक : माधव स्मृति न्यास
६, मित्रमंडल सोसायटी
उस्मानपुरा
कर्णावती – ३८००१४
दूरभाष : (०७९) २७५५३२४६

प्रथम आवृत्ति : आगस्त २००४

किंमत : २० रुपिया

मुद्रक : साधना मुद्रणालय ट्रस्ट
५५/१४, सिटि मिल कम्पाउन्ड
कांकरिया रोड, रायपुर,
कर्णावती – ३८० ००१.
दूरभाष : (०७९) २५४६७७९०

ISBN 81-86595-16-3

Cover designed by:
Sudhakara Darbe

Typeset by:
Creative Graphics, Bangalore, India. Ph: 6706014

Printed at:
Rashtrotthana Mudranalaya, Bangalore, India. – 560 019.

अनुक्रम

अनुक्रम ३

प्रस्तावना ४

आमुख ५

१ श्री गुरुजी व्याख्यान माला - दिनांक १७-२-२००४ ..... ६

२ श्री गुरुजी व्याख्यान माला - दिनांक १८-२-२००४ ..... १७

३ श्री गुरुजी व्याख्यान माला - दिनांक १९-२-२००४ ..... ३०

प्रस्तावना

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निर्माता आद्य सरसंघचालक प.पु.डॉ.हेडगेवार संघ स्थापना के मात्र १५ वर्ष बाद ही केवल ५० वर्ष की आयु में अकालकालकवलित हुए। उस समय संघ का अधिकांश कार्यकर्ता वर्ग आयु में छोटा था। संघ कार्य का आकार और बल भी यद्यपि अखिल भारतीय रूप ले चुका था, अभी अत्यल्पही था। ऐसी स्थिति में इस नवजात संघ शिशु को सुपोषित कर मार्ग की सभी प्रकार की बाधाओं को उसे पार कराते हुए आगे ले जाने के कार्य का गुरुभार द्वितीय सरसंघचालक के नाते प.पू.श्री माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर उपाख्य पू.श्री गुरुजी के कंधे पर आ पडा। तब उनकी आयु मात्र ३५ वर्ष की थी।

१९४० से १९७३ तक के अपने ३३ वर्षों के सुदीर्घ कार्यकाल में पू. गुरुजी ने संघ कार्य को राष्ट्रीय तथा आंतरराष्ट्रीय घटनामंच पर उदीयमान सात्विक हिन्दु शक्ति का स्थान प्राप्त करा दिया। संघ के और देश के जीवन में यह सारा कालखंड पराकोटि का उथलपुथल भरा संकटपरिपूर्ण तथा देश के सभी मान्यवर प्रमुख व्यक्तियों के कर्तृत्व परीक्षा का कालखंड था। अपने वज्रकठोर दृढनिश्चय, सतत परिश्रम, प्रखर बुद्धिमत्ता व अडिग निष्ठा के सहारे सभी स्वयंसेवकों को अपने स्नेह से चैतन्य व विश्वास प्रदान करते हुए आत्मविश्वास से पू.श्री गुरुजी ने कैसे पार किया वह तेजस्वी व रोमांचकारी इतिहास सबके सामने है।

श्री माधव गोविंद उपाख्य बाबुराव वैद्य इस कालखंड के संघ के कार्यकर्ता के नाते प्रत्यक्षदर्शी रहे है। नागपुर के ही कार्यकर्ता होने के कारण पू.श्री गुरुजी तथा पू.श्री बाळासाहब देवरस से उनका अत्यंत निकट संपर्क रहा है। ऐसे निकट सान्निध्य के अनुभवों को पकडना, उनका विश्लेषण करना तथा संदर्भ व परिणामों के आधार पर सही परिप्रेक्ष्य में उनको समझ पाना इसके लिये आवश्यक चिंतनशीलता, बहुश्रुतता व अनुभव उनके पास भरा पडा है। एक सिद्धहस्त लेखक, वक्ता व सार्वजनिक जीवन में निरंतर सक्रिय कार्यकर्ता के नाते इन अनुभवों को सभी लोगो के पास यथातथ्य व सटीक रूप में पहुँचाने का कौशल्य भी उनको प्राप्त है। इसलिये उनके द्वारा कर्णावती में पू.श्री गुरुजी के जीवन पर दिये हुए व्याख्यानों का यह संकलन पू.श्री गुरुजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व को उसके संपूर्ण भव्यता, ओजस्विता व सामयिकता के साथ सामान्य जनों तक पहुँचाने में यशस्वी होगा यह विश्वास है।

(मोहन भागवत)
सरकार्यवाह, रा.स्व.संघ

अधिक श्रावण कृ. ३०
युगाब्द ५१०६
१५-८-२००४

आमुख

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक प. पू. माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर उपाख्य 'श्री गुरुजी' का जीवन वृत्त एक विराट ज्योति पुंज है। श्री गुरुजी दीक्षित आध्यात्मिक पुरुष, भविष्य द्रष्टा, श्रेष्ठ चिंतक एवं राष्ट्र तथा समाज के लिए सर्वांग समर्पित व्यक्ति थे। उनका नेतृत्व अद्-भूत और हर कदम पर प्रेरणादायी रहा है। ऐसे तपस्वी, प्रेरणामूर्ति व्यक्तित्व के जीवन प्रसंगों से प्रेरणा लेने हेतु 'माधव स्मृति न्यास' द्वारा कर्णावती में दिनांक १७, १८ और १९ फरवरी, २००४ को "श्री गुरुजी व्याख्यान माला" का आयोजन किया गया था। वक्ता थे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वरिष्ठ विचारक श्री मा. गो. वैद्य।

श्री वैद्य जी बाल्यावस्था से ही संघ के स्वयंसेवक रहे है। श्री गुरुजी का सान्निध्य उन्हें दीर्घ काल तक मिला है। संघ में विविध दायित्वों का उन्होंने निर्वाह किया है। वर्तमान में वे केन्द्रीय कार्यकारी मंडल के सदस्य हैं। तीन दिन तक चली इस व्याख्यान माला में प्रबुद्ध विचारक, चिंतक एवं कुशल वक्ता श्री वैद्य जी द्वारा प्रस्तुत श्री गुरुजी के जीवन वृत्त की ये झलकियाँ पाठक को युग द्रष्टा श्री गुरुजी के विराट, सरल, दृढनिश्चयी और सहृदय व्यक्तित्व से साक्षात्कार कराने में सफल होगी, ऐसा विश्वास है।

अनेक वाचकों और कार्यकर्ताओं के आग्रह को पूर्ण करने हेतू इन व्याख्यानों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का हमारा विनम्र प्रयास है।

वल्लभ सावलिया
ट्रस्टी
माधव स्मृति न्यास

१ श्री गुरुजी व्याख्यान माला - दिनांक १७-२-२००४

वक्ता : मा. श्री मा. गो.वैद्य
स्थान : टैगोर हॉल, कर्णावती

गुरुजी पर तीन दिन बोलना है। लगता है कि तीन दिन में क्या बताया जाय ? एक वाक्य में भी बताया जा सकता है, और तीन दिन भी पर्याप्त नहीं हो सकते। वेदांत के बारे में बताते हैं कि – श्लोकाऽर्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
- यानी कोटि ग्रंथोंमें जो लिखा है, वह मैं आधे श्लोक में बता देता हूँ और वह आधा श्लोक बताता है। कि ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और जीव व परमात्मा एक है। तो गुरुजी के बारे में भी एक वाक्य में बताया जा सकता है कि गुरुजी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ३३ वर्षों तक सरसंघचालक थे। पर्याप्त समय है ३३ वर्ष। आज जो भी संघ है, उसका कारण, उसका श्रेय किसी एक व्यक्ति को देना है तो वह प.पू.गुरुजी को जाता है। संघ का जो आज का स्थान है, अपने राष्ट्र के जीवन में वह बड़ा महत्व का है। अंग्रेजी में जिसको 'सेन्टर स्टेज' बोलते हैं, उस सेन्टर स्टेज पर संघ आ गया है, वह किसी की कृपा से नहीं। संघ के स्वयंसेवकों के परिश्रम से तथा श्रीगुरुजी ने संघ को जो दिशा दी, जो तत्वज्ञान दिया, जो दर्शन दिया, उसके कारण यह स्थिति आई है।

वैसे देखा जाय तो गुरुजी का संघ में आना एक आश्चर्य है, एक चमत्कार है। क्योंकि यह राजनैतिक जीवन से, सामाजिक जीवन से जुड़ा हुआ व्यक्तित्व नहीं था। संघ के आद्य सरसंघचालक, जिन्होंने स्थापना की वह डॉ. हेडगेवार और श्री गुरुजी में देखा जाय तो कोई साम्य नहीं था। मैंने दोनों को देखा है इसलिए कहता हूँ। डॉ. हेडगेवार काले थे, गुरुजी गोरे थे। हेडगेवार शरीर से बहुत तगड़े थे। अखाड़ा पिसे हुए थे, क्रान्तिकारी थे। कोई सी.आई.डी. का पुलिस पीछे रहता था उसको सताने के लिए नागपुर की धूप में, दोपहर पाँच मील यानी आठ किलोमीटर तक वह लोहे के रिंग लेकर दौड़ते थे। जन्म से कहना अतिशयोक्तिपूर्ण होगा, लेकिन डॉ. हेडगेवार बचपन से सार्वजनिक जीवन से जुड़े हुए थे। एक आठ, नौ वर्ष का बालक, प्राथमिक तीसरी क्लास में पढ़ने वाला। विक्टोरिया रानी के राज्यारोहण के साठ साल पूरे होने पर एक उत्सव मनाया गया। विक्टोरिया ब्रिटेन की रानी थी। हमारी सम्राज्ञी थी। तो बच्चों को स्कूल में मिठाई बाँटी गई। सब बच्चों ने खाई, किसको मिठाई अच्छी नहीं लगती ? किन्तु नौ साल के केशव हेडगेवार ने वह मिठाई नहीं खाई। फेंक दी। वह ग्यारहवी क्लास में गया तो एक स्कूल इन्स्पेक्टर आने वाला था। उन्होंने तय किया कि मैट्रिक के विद्यार्थी वन्दे मातरम् कह कर उनका स्वागत करेंगे। वर्ग के दो सेक्शन थे। दोनों सेक्शनों में इन्स्पेक्टर का स्वागत हो गया वन्दे मातरम् से। उस समय वन्दे मातरम् कहना अपराध था। विद्यार्थियों को केन से, लाठी से मारा जाता था। वह इन्स्पेक्टर तो आग बबूला हो गया। हैड मास्टर से गुस्सा किया। बोला क़ि पता लगाओ

किसकी यह साजिश है ? कोई विद्यार्थी बोलने के लिए तैयार नहीं था। आखिर हैड मास्टर ने सब विद्यार्थियों को स्कूल से निकाल दिया। फिर बहुत दिन स्कूल बंद रहा। मैट्रिक का क्लास बंद रहा, तो अभिभावक आ गए। उनकी हैड मास्टर के साथ चर्चा हुई। कोई विद्यार्थी माफी माँगने के लिए तैयार नहीं था। उसमें से रास्ता निकाला गया, कि माफी माँगता हूँ ऐसा बोलना नहीं है किन्तु जब हैड मास्टर पुछेंगे, तुमसे गलती हुई है ? तो मुंडी हिलाकर बताना और क्लास में चले जाना। सब चले गए, केशव हेडगेवार नहीं गया। निकाल दिया स्कूल से। यवतमाल और बाद में पुणे में पढाई कर उसने मॅट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। बाद में हेडगेवार डॉक्टर बनने के लिए कलकत्ता गए।

जानबूझ कर गए क्योंकि वह क्रान्तिकारियों का केन्द्र था और सब क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ डॉ. साहब जानते थे। वहाँ क्रान्तिकारियों की सबसे बड़ी, ऊँची अधिकारिणी कहिए या संस्था कहिए अनुशीलन समिति थी वह उसके अंतरंग सदस्य बन गए। कलकत्ता से डॉक्टर की पदवी लेकर आये, किन्तु दवाखाना नहीं खोला। क्योंकि दवाखाना खोलने के लिए डॉक्टर बने ही नहीं थे। वे क्रान्तिकारी बनने के लिए डॉक्टर बने थे। विवाह नहीं किया, संसारी नहीं बने। फिर क्रान्तिकार्य करते समय उनके मन में विचार आया कि गवर्नर को मार कर, दो चार यूरोपियन मार कर, देश स्वतंत्र होने वाला नहीं है। अंग्रेज भागने वाला नहीं है। जब तक समाज में स्वतंत्रता के लिए जागृति उत्पन्न नहीं होगी तब तक स्वातंत्र्य आएगा तो भी टिकेगा नहीं। इसलिए उस समय स्वतंत्रता का आंदोलन जो काँग्रेस के नाम से चलता था, उस आंदोलन में जी जान से शामिल हो गए। उस समय नागपुर नाम का एक अलग प्रांत था, चार जिलों के उस प्रांत के काँग्रेस कमेटी के वे सेक्रेटरी बने। हिन्दू सभा के साथ भी उनका लगाव था। उसके सम्माननीय सदस्य भी बने। यानी कि बचपन से लेकर, स्कूल से लेकर, संघ की स्थापना तक, सब प्रकार का राजनैतिक जीवन का अनुभव लिये हुए, अनुभवसंपन्न व्यक्ति थे डॉ. हेडगेवार। और उनका उत्तराधिकारी कौन बना ? जो सार्वजनिक मंच पर कभी बैठा भी नहीं था। अच्छा विद्यार्थी था। प्राणिशास्त्र में एम. एस. सी. की पदवी ली थी। शोध छात्र के नाते आज के चेन्नई याने उस समय के मद्रास में थे। कुछ दिन प्राध्यापक रहे। फिर प्राध्यापकी छोड़ दी कि वकालत करेंगे। नागपुर में आए। वकालत की परीक्षा दी। बोर्ड भी लगाया। कोर्ट में कभी गए होंगे मालूम नहीं। वह बताते थे कि एक बार कोर्ट में गये थे। लेकिन मैंने बोर्ड पढ़ा था, माधव सदाशिवराव गोलवलकर एम. एस. सी. एल.एल बी.। किन्तु जो आकर्षण, सारी जो दृष्टि थी वह आध्यात्मिक थी। वह एकाएक पैदा नहीं हुई। जब वे चेन्नई में शोध कर रहे थे, तब अपने एक मित्र को लिखा हुआ पत्र उनके चरित्र में प्रकाशित है। उस पत्र में मित्रको उन्होंने लिखा, "नौकरी करना, पैसा कमाना, विवाह करना ऐसा सामान्य जीवन जीना, मेरी इच्छा नहीं है। मेरा मन हिमालय की तरफ दौड़ता है।"

तो उस समय से वे आध्यात्मिकता की ओर आकृष्ट थे और सामान्य जीवन से धक्का – मुक्की से, उथलपुथल से अलिप्त रहना चाहते थे। डॉक्टर जी ने संघ में उनको लाने के काफी प्रयास किये। पहले तो उनको एक शाखा का कार्यवाह नियुक्त किया। एक संघ शिक्षा वर्ग में सर्वाधिकारी भी नियुक्त किया। किन्तु उसके बाद भी वे बंगाल में सारगाछी चले गये और संन्यास की दीक्षा

ली। वे दीक्षित संन्यासी थे। फिर वे १९३८ में नागपुर आए। डॉक्टर जी ने उनको नागपुर के संघ शिक्षा वर्ग के सर्वाधिकारी का दायित्व दिया। बाद में सरकार्यवाह बनाया और सिर्फ दो साल के बाद, डॉक्टर जी के देहांत के बाद, डॉक्टर जी की इच्छा से वे सरसंघचालक बने। यह आध्यात्मिकता की ओर जाने वाले गुरुजी के जीवन प्रवाह को संघ के सामाजिक कार्य में लाना, मैं उतना ही कठिन कार्य समझता हूँ जैसा भगीरथ ने स्वर्ग में बहने वाली गंगा के प्रवाह को पृथ्वी पर लाया। भगीरथ की कथा आपको मालूम है। महाराजा सगर थे। कपिल मुनि के शाप के कारण, पुराण बताते हैं, कि उनके साठ हजार पुत्र जलकर भस्म हो गए। ऋषि से पूछा कि उनका उद्धर कैसे होगा ? तो उन्होंने कहा कि स्वर्ग में बहने वाली नदी गंगा है, उसका पानी यहाँ आएगा, उसका स्पर्श अगर इनको होगा तो उनका उद्धार हो जाएगा। सगर महाराज तो मर गए। लेकिन उनके पुत्र अंशुमान ने गंगा को पृथ्वीपर लाने के लिए तपस्या की। लेकिन सफलता नहीं मिली। अंशुमान के पुत्र यानी सगर महाराज के पौत्र भगीरथ थे। उन्होंने तपस्या की और स्वर्ग से गंगा को वे पृथ्वी पर ले आए। कहते हैं कि बीच में शंकर की जटा में गंगा उलझ गई थी। तो वहाँ से इसे निकाला। जन्हु नाम के एक ऋषी की टांग में फँस गई। तो वहाँ सेंध लगाकर उसको बाहर निकाला तबसे गंगा पृथ्वी पर बह रही है।

पुराण की कथाएँ साधारणतः रूपक कथाएँ होती हैं। जिनको अंग्रेजी में 'एलेगरी' बोलते हैं। इस रूपक कथा का मतलब क्या है ? गंगा स्वर्ग में बहती थी, याने कहाँ बहती थी ? वह तिब्बत से बहती थी। जैसे आज 'ब्रह्मपुत्र' बहता है। आधा ब्रह्मपुत्र यानी करीब ९०० मील वह तिब्बत में बहता है। जिसके पानी का कोई उपयोग नहीं है। बर्फ ही है। बाद में आसाम होकर भारत में आता है। गंगा तो पूरी की पूरी तिब्बत में से बहती होगी। तिब्बत का ही पुराना नाम 'त्रिविष्टप्' है उसका एक अर्थ संस्कृत में, स्वर्ग होता है। अब सगर के ६० हजार पुत्रों का अर्थ क्या है ? राजा प्रजा का पिता ही होता है। सगर राजा के राज्यकाल में अकाल पड़ा होगा। ऐसा कहते हैं कि जब आकाश में कपिल नक्षत्र का उदय होता है तब अकाल आ जाता है, पानी नहीं बरसता। लोग मरते हैं। उस अकाल में साठ हजार लोग मर गए। राजा प्रजा का पिता होता है। प्रजा का अर्थ समाज भी है। "प्रजा स्यात् संततौ जने" ऐसा शब्दकोशमें बताया है। ६०,००० लोग मर गए। भगीरथ ने देखा कि गंगा का जल आएगा कैसे ? तपस्या की। इन्जीनीयरिंग स्किल या अभियंता की उद्यमशीलता ने एक बिन्दु खोज निकाला। जिसको तोड़ने से गंगा का सारा पानी इस ओर आया। बहुत वेग से आया। कहते हैं शंकर ने जटा में धारण किया। मतलब पहाड़ियों में पानी उलझ गया। उसमें से निकला। पता नहीं कब सगर महाराज हो गए, कब भगीरथ हो गया। लेकिन आज तक जहाँ उत्तरप्रदेश, बिहार में गंगा बहती है वहाँ अकाल नहीं होता।

तो जिस प्रकार भगीरथ ने स्वर्ग में बहने वाली गंगा का प्रवाह यानी पानी का प्रवाह, पानी का दूसरा नाम जीवन भी है, को पृथ्वी पर लाकर इस भारत देश के पुत्रों का उद्धार किया, उसी प्रकार डॉक्टर जी ने अध्यात्म की ओर, मोक्ष की ओर, जाने वाला गुरुजी का जीवनप्रवाह सामाजिक धरातल पर लाया। और हिन्दू राष्ट्र को, समाज को उद्धारकर्ता मिला।

व्यक्ति को किसी कार्य में कितना महत्व देना चाहिए उसके बारे में दो मत हो सकते हैं। एक मत है कि परस्थितियाँ नेता बनाती हैं तो दूसरे कहते हैं कि नेता परस्थितियों को जन्म देता है। महाभारत में भीष्माचार्य ने युधिष्ठिर के प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा-

कालो वा कारणं राज्ञः राजा वा कालकारणम्
इति ते संशयो मा भूत् राजा कालस्य कारणम् ।

इसका अर्थ है राजा के कारण काल बदलता है। राजा याने नेता, जो समाज का नेतृत्व करता है तो समाज के नेतृत्व के कारण वह समाज में परिवर्तन लाता है। गुरुजी का ऐसा एक नेतृत्व है कि जिसने समाज में, अपने राष्ट्र जीवन में और उसका माध्यम जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है, उसके जीवन में एक नया मोड़ एक नया परिवर्तन लाया। इसलिए मैं कहता हूँ कि आज का जो संघ है वह जो आनुषंगिक कार्यों से श्रेष्ठ है ऐसी धारणा बनाने का श्रेय श्रीगुरुजी का है। इसके लिए गुरुजी को बहुत कष्ट पड़ा है। इसलिए मैं कहता हूँ आज के संघ का जो वैभव है उसके मूल में कोई एक व्यक्ति होगा, (एक व्यक्ति तो नहीं, बहुत लोगों का हाथ उसमें लगा है) लेकिन किसी एक व्यक्ति को ही श्रेय देना है तो वह श्रेय, माधव सदाशिव गोलवलकर उर्फ गुरुजी को ही देना चाहिए। मैंने कहा उनका सार्वजनिक जीवन का कोई अनुभव नहीं था। डॉ. हेडगेवार का जीवन अनुभवसम्पन्न था। गुरुजी को कोई अनुभव नहीं था। वह प्राध्यापक थे, संन्यासी थे, आश्रम में रहने वाले थे। लेकिन मैंने देखा है कि राजनिति के क्षेत्र में जिससे उनका संबंध नहीं था, उसका निदान, उसकी चिकित्सा, और उसका उनका मूल्यांकन बहुत अचूक रहता था।

एक उदाहरण मुझे मालूम है। १९७१ की बात है, बांग्लादेश का युद्ध हो गया था। पाकिस्तान टुटा तब उन्होंने मुझसे पूछा कि यह जो पाकिस्तान के दो टुकडे हो गए वह अच्छी बात हुई कि खराब बात हुई ? मैने कहा अच्छी बात हुई। तो पूछा क्यों अच्छी बात हुई ? मैने कहा कि "पाकिस्तान के साथ कभी न कभी तो लड़ाई होनी है । जब पाकिस्तान के साथ लड़ाई होगी तो दोनों ओर से हम पर हमला हो सकता है। अब एक ओर से तो हम सुरक्षित रहेंगे। क्योंकि अब हमारा एक मित्र देश बन गया है।" तब उन्होंने कहा कि "बांग्लादेश कब तक हमारा मित्र राष्ट्र बना रहेगा ? उसकी क्या गारंटी है ? " उस समय मुझे लगा गुरुजी क्यों संशय व्यक्त कर रहे हैं ? लेकिन आज मैं देखता हूँ कि गुरुजी सही निकले। कहाँ है मुजीब्बुर रहमान ? कौन से बांग्लादेश के राज्यकर्ता के मन में भारत ने उनको स्वतंत्रता दिलाई, इसलिए कृतज्ञता का भाव है ? किसी में नहीं। बहुत ऐसी बातें चलती थी। उनके सम्बन्ध में जो गुरुजी कहते थे वह सही निकलता था।

और एक बात देखिए। १९५० और १९६० के बीच में पूरे विश्व में समाजवाद का बोलबाला था। जो समाजवादी नहीं उसको बुद्धिजीवी ही नहीं मानते थे। जो समाजवाद पर विश्वास नहीं करता था वह कोई कार्य ही नहीं कर सकता है ऐसा भी कहते थे। १९५५ में भारतीय मजदूर संघ निकला। दो तीन वर्ष के बाद इन्टक के एक नेता मुझे मिले। हमारे बड़े अच्छे मित्र थे। वे कहते थे आप कभी भी मजदूरों की संगठना नहीं बना सकते। पूछा क्यों नहीं बना सकते, तो उन्होंने कहा

क्योंकि आपका वर्गविग्रह पर विश्वास नहीं है। "Because you do not believe in the class struggle ". किन्तु आज क्या स्थिति है ? क्लास स्ट्रगल को न मानने वाला भारतीय मजदूर संघ, हिन्दुस्तान में मजहूरों का सबसे बड़ा संगठन है। जब समाजवाद का बहुत बोलबाला था तब गुरुजी ने कहा था कि समाजवाद से देश का उद्धार नहीं हो सकता। बंगलौर का उनका एक भाषण था, उसकी पुस्तिका प्रकाशित है। " नॉट सोश्यालिजम बट हिन्दू राष्ट्र " अपने देश की जो समस्यायें हैं, वह समाजवाद से हल होने वाली नहीं है। हल होने वाली है हिन्दू राष्ट्र के सिद्धांतों के आधार पर। यह उन्होंने १९६० में कहा, जब समाजवाद के खिलाफ बोलना एक साहस था। उस समय ' समाजवाद' शब्द का इतना जादू था कि, हिन्दू महासभा के वरिष्ठ नेता प्रो. वि. घ. देशपाण्डे ने 'हिन्दू सोश्यालिज्म' नाम से एक सिद्धान्त रखा था। उस विषय पर उनके तीन भाषण हुए थे। १९८० में भारतीय जनता पार्टी की स्थापना हुई। उसने भी 'गाँधीवादी समाजवाद' का आदर्श अपने सामने रखा था। चार वर्षों के भीतर उसने समाजवाद से अपने को दूर किया, यह बात अलग है। किन्तु वह जमाना समाजवाद का था। तब श्री गुरुजी ने कहा कि " समाजवाद नहीं, हिन्दू राष्ट्र का सिद्धान्त चाहिए। " तो ऐसी उनकी अलौकिक प्रज्ञा थी जो अनागत को भी देख सकती थी।

उनके काल में अनेक संकट आए। एक संकट ऐसा आया कि लोगों को लगा कि संघ मर गया। संघ समाप्त हो गया। वह दिन था ३० जनवरी १९४८ का। गांधी जी की हत्या हुई थी। हत्यारा हिन्दूसभा का कार्यकर्ता था। हिन्दूत्व की बात करता था। हिन्दूसभा के एक सक्रीय कार्यकर्ता ने गाँधीजी की हत्या की थी, पर प्रतिबंध हिन्दूसभा पर नहीं लगा। प्रतिबन्ध लगा संघ के ऊपर। वह सोची समझी चाल थी। गांधीजी की हत्या नहीं होती तो भी संघ पर प्रतिबंध आता। काँग्रेसवाले कोई न कोई मौका चाहते थे। १९४७ के १५ अगस्त के बाद ही सरकार ने सोचा था कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को खत्म करना चाहिए क्योंकि वह बहुत बढ़ रहा था, और काँग्रेस की तरफ से लोगों का विश्वास हट रहा था। १९४६ में ' सेन्ट्रल एसेम्ब्ली' के लिए चुनाव हुआ, उस चुनाव की कांग्रेस की घोषणा थी कि हिन्दुस्थान अखंड रहेगा। विपक्ष में मुस्लिम लीग थी। उसने कहा देश के टुकड़े होकर रहेंगे। इस चुनाव में कांग्रेस को सर्वत्र जीत मिली। केवल हिन्दूबहुल प्रदेशों में ही नहीं, जहाँ मुसलमान ज्यादा थे, उस ' नॉर्थ वेस्ट फ्रंटीअर प्रोविन्स' में जहाँ ९५ प्रतिशत मुसलमान थे, वहाँ भी कांग्रेस जीती और कांग्रेस के मुख्यमंत्री बने। जिन प्रदेशों का पाकिस्तान बना उनमें से सिंध और पंजाब में भी मुस्लिम लीग को बहुमत नहीं मिला। पंजाब में 'युनियनिस्ट पार्टी' जीत कर आई जो जिन्ना के मुस्लिम लीग के खिलाफ थी। सिंध के अल्लाहबक्ष पहले मुख्यमंत्री बने मुस्लिम लीग को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। बाद में अल्लाहबक्ष का खून हो गया और मुस्लिम लीग सत्ता में आई। केवल बंगाल में मुस्लिम लीग को थोड़ा बहुमत मिला। यानी जिन प्रदेशों का पाकिस्तान बनने वाला था, वहाँ के मुसलमानों ने पाकिस्तान के पक्ष में मतदान नहीं किया। और जहाँ के मुसलमान पाकिस्तान जाने वाले नहीं थे उन उत्तर प्रदेश, गुजरात, मद्रास, महाराष्ट्र, बिहार इन प्रदेशों के मुसलमानों ने मुस्लिम लीग के समर्थन में यानी देश के विभाजन के लिए मतदान किया। उस समय मुस्लिमों के लिए आरक्षित सीटें रहती थीं। उनमें उम्मीदवार

मुसलमान रहता था और मतदान का अधिकार भी केवल मुसलमानों को ही रहता था। ऐसी मुस्लिम आरक्षित कान्स्टीट्यूएंसी थी उन सब में कांग्रेस का एक भी उम्मीदवार जीत कर नहीं आया। मुस्लिम लीग के उम्मीदवार ही जीत कर आए। वे भी ८५ प्रतिशत वोटों से जीत कर आए। लेकिन बाकी जगह तो कांग्रेस को ही बहुमत मिला था। कांग्रेस ने भारत अखण्ड रहेगा इस मुद्दे पर चुनाव लड़ा था और देखते है कि बारह-पंद्रह महिने के अंदर ही १९४७ के जून महिने में कांग्रेस ने भारत का विभाजन मान्य कर लिया। लोगों को यह विश्वासघात लगा। कांग्रेस कहती थी कि उसने शान्ति के लिए देश का विभाजन माना। लेकिन शांति नहीं रही। अहिंसा की धज्जियां उड़ी।

१९३९ से १९४५ तक द्वितीय विश्वयुद्ध चला। छह साल के महायुद्ध में भी जितने लोग नहीं मरे उतने लोग १९४७ में मारे गए। १४ अगस्त के या उससे पहले पश्चिम पाकिस्तान में हिन्दूओं की संख्या १८ प्रतिशत थी। आज एक प्रतिशत है। कहाँ गये १७ % ? जिसको आज बांग्लादेश बोलते हैं वह उस समय ईस्ट पाकिस्तान बना था। वहां आजादी के पहले ३८ % हिन्दू थे आज ९ % हिन्दू रह गये हैं। कहाँ गए २९ % ? हिन्दुस्तान में भाग के आए, मारे गए या उनका जबरदस्ती मतान्तरण कर दिया गया ? कितनी कीमत देने पड़ी ? पाकिस्तान से जो गाड़ियाँ आती थी, उनमें जीवन्त आदमी नहीं आते थे, मुर्दे आते थे। उस समय जो लोग वहाँ से आएं, संघ ने उनकी जो सेवा की उसकी कोई तुलना नहीं है। संघ के सहायता कार्य की विरोधियों ने भी प्रशंसा की। संघ बढ़ता गया और सरकार डरती गई। संघ ऐसा बढ़ता गया कि केवल मुम्बई के गुरु पूर्णिमा के उत्सव में जो १९४७ के अगस्त महिने में हुआ, १५००० स्वयंसेवक गणवेश में उपस्थित थे। महाकौशल जैसे छोटे से प्रान्त में ६०० शाखाएँ थी, १५० प्रचारक थे। अकोला में तीन दिन का शिविर हो गया, उसमें १५००० स्वयंसेवक उपस्थित रहे। दिसम्बर, १९४७ में पुणे के पास चिंचवड में संघ का शिविर आयोजित किया गया था, केवल महाराष्ट्र प्रांत का। उसमें विदर्भ नहीं था। तो सरकार ने उस पर प्रतिबंध लगा दिया। मोरारजी भाई तब बॉम्बे प्रेसीडेन्सी के मुख्यमंत्री थे। बोले शिविर नहीं होगा। फिर यह शिविर जिले-जिले में हुआ। सभी जिलों के शिविरार्थियोंका योग लगाया, तो योग आया १,४६,००० तरुण स्वयंसेवक। यह सारा दृश्य देखकर कांग्रेस वाले घबरा गए और संघ पर आरोप लगाना शुरू कर दिया कि संघ फासिस्ट है, हिंसक है, हिंसा पर विश्वास करता है। गोविन्द वल्लभ पंत जो उत्तर प्रदेश (तब युनाइटेड प्रोविन्सेस) के मुख्यमंत्री थे, उनके संसदीय सचिव गोविन्द सहाय की पुस्तक है। उसमें उन्होंने कहा है कि संघ पर प्रतिबंध लगाओ। संघ फासिस्ट है। छोटी सी किताब है और उसमें उदाहरण दिये हैं कि कहाँ-कहाँ संघ ने हिंसाचार किये। सभी उदाहरण झूठे निकले। पं नेहरू ने पूर्व पंजाब के सरकार को परामर्श दिया था कि संघ और अकाली दल पर प्रतिबंध डालो। २९ जनवरी, १९४८ को गांधी जी की हत्या के एक दिन पहले पं. जवाहरलाल नेहरू का अमृतसर में भाषण हुआ। उसमें उन्होंने कहा - 'हम संघ को जड़मूल से उखाड़ फेकेंगे।' क्या बिगाड़ा था संघ ने ? लेकिन वे डर गए थे और उन्होंने देश के विभाजन का जो पाप किया, उसका उनको अपराधबोध चुभता था। उनको लगा कि संघ कांग्रेस के खिलाफ खड़ा हो सकता है। इस डर से संघ के खिलाफ एक प्रकार का

वातावरण बनाने का प्रयास किया कांग्रेस के एक गुट ने। कांग्रेस का दूसरा भी एक गुट था। वल्लभभाई पटेल उस गुट के अग्रणी नेता थे। सरदार पटेल के दो भाषण हैं। एक जयपुर का भाषण है नवम्बर १९४७ का और दूसरा जनवरी ४८ का कानपुर का भाषण है। कानपुर में उन्होंने आर. एस. एस. की प्रशंसा की और कहा कि 'यह देशभक्तों का संगठन है, कोई गुण्डों का नहीं और प्रतिबन्ध लगाने वाले कानून के डण्डे से देशभक्तों के संगठन को समाप्त नहीं किया जा सकता।' यह सरदार पटेल का भाषण है लेकिन एक अनपेक्षित, अविचारी कृत्य ३० जनवरी को हो गया। संघ पर प्रतिबंध आया। एक विलक्षण प्रतिबंध था जो हमने देखा। इमरजेंसी के समय में प्रतिबन्ध आया उसको भी देखा। १९९२-९३ का भी देखा। लेकिन ४८ का जो प्रतिबंध था उतना भीषण कोई प्रतिबंध नहीं था। उस समय सारी जनता खिलाफ थी, अखबार खिलाफ थे, सरकार खिलाफ थी और गांधीजी जैसे विश्ववंदनीय पुरूष की हत्या का आरोप था और आरोप लगाने वाले कोई मामूली व्यक्ति नहीं थे। जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल थे, राजेन्द्र प्रसाद थे। यानी स्वातंत्र्य समर के जो सेनानी थे वे आरोप लगाते थे। उनकी देशभक्ति पर कोई संशय व्यक्त नहीं कर सकता था। गुरुजी उस समय मद्रास में थे, चेन्नई में। विमान से नागपुर आए। पहला वाक्य बोले, 'संघ बीस साल पीछे चला गया।' गुरुजी को पकड़ा एक फरवरी और दो फरवरी के बीच रात दो बजे।

एक फरवरी का दिन तो हम भूल ही नहीं सकते। ३० जनवरी को गांधीजी की हत्या हुई। ३१ जनवरी को उनका अंतिम संस्कार हो गया। शोक सभाएँ हुई, और एक फरवरी से सोची समझी साजिश के मुताबिक स्वयंसेवकों के घरों पर, संघ के प्रतिष्ठानों पर हमले शुरू हो गए। हम लोगों ने तय किया था कि नागपुर में तीन स्थानों का रक्षण करना चाहिए, एक तो डाक्टरजी की समाधि का रक्षण करना चाहिए, दूसरा गुरुजी के मकान का रक्षण करना चाहिए और तीसरा संघ का कार्यालय जो नया नया बना था १९४६ में, उसका रक्षण करना चाहिए। हम डाक्टरजी की समाधी की रक्षा नहीं कर पाए। वहाँ साठ-सत्तर स्वयंसेवक थे, वे पीटे गए। भीड़ बहुत ज्यादा थी। खुला मैदान था। और समाधि का विध्वंस हो गया। गुरुजी का मकान एकदम गली में होने के कारण, वहाँ एक साथ इतने ज्यादा लोग नहीं समा सकते थे किन्तु दबाव बहुत था। दरवाजा कभी भी टुट सकता था। अंदर केवल सोलह लोग थे उनका नेतृत्व बालासाहेब देवरस कर रहे थे। बालासाहेब देवरस ने कहा सोलह लोगों की लाशें पहले गिरेंगी बाद में गुरुजी को कोई हाथ लगा सकेगा। गुरुजी शांत बैठे थे। मैं स्वयं थाने में गया, बोला पुलिस भेजिए, वहाँ कुछ भी हो सकता है। लारियाँ भरकर पुलिस थी पर कोई वहां से हिलने के लिए तैयार नहीं था। तीसरा स्थान था संघ का कार्यालय। आज जो कम्पाउण्ड वॉल है वह तब नहीं थी। सीधे मैदान से अंदर आ सकते थे। पंडित बच्छराज व्यास नागपुर के कार्यवाह थे, शमी के वृक्ष के नीचे बैठे थे। तय हो गया था कि भीड़ में से उस वृक्ष की मर्यादा को लांघ कर भीतर कोई आया तो टूट पड़ना। अंदर केवल साठ लोग थे, उनमें से तीस के पास दण्ड था। उन तीस लोगों को कहा कि संकेत मिलने पर आप प्रहार मारते चलते आना। चार-पाँच हजार की भीड़ थी। उसमें से कुछ लोग सामने आए और कहे कि हमें कार्यालय देखना हैं। बच्छराजजी ने कहा आज शोक का दिन है, कल आईये, कल

देख सकेंगे। बात से बात बढ़ती गई। इतने में एक सज्जन थे, सज्जन कहिए, दुर्जन कहिए, बच्छराज जी के शर्ट की कॉलर पकड़ी। संकेत हो गया व्हीसल का और दंडधारी तीस लोग जो सीढ़ी में बैठे थे प्रहार मार करते, भ्रमण मार करते भीड़ पर टूट पडे और भीड़ भागी। भाग कर कहाँ गई ? पुलिस थाने में गई। और कहा आप यहाँ क्या देख रहे हैं, वहाँ तो लाशें गिर गही हैं। तो पुलिस आई। कार्यालय पर आई। श्री गुरुजी के घर पर आई। रेशिमबाग पर भी गई। पुलिस केवल १५-२० मिनिट देर से आती, तो गुरुजी का मकान का दरवाजा टूट जाता और न जाने क्या हो जाता। लेकिन इस सारे बवंडर में गुरुजी की स्थिति क्या थी ? जो लोग अंदर थे उन्होंने बाद में बताया कि गुरुजी शांतचित्त से पढ़ रहे थे। गुरुजी कहते थे कि मेरे कारण खून-खराबा नहीं होना चाहिए। मेरे ही समाज को मेरा प्राण लेना है तो मैं तैयार हूँ। लेकिन बालासाहेब सहसरकार्यवाह थे। उन्होंने एक योजना बनाई थी, अंदर की, बाहर की। इतनी उत्तेजना भरी स्थिति में गुरुजी शान्तचित्त थे। कौन ऐसी परिस्थिती में शान्त रह सकता था ? गुरुजी उस समय बूढे नहीं थे। केवल ४२ साल की उम्र थी उनकी। मेरे सामने कभी-कभी भगवान विष्णु का चित्र आ जाता है कि नाग की शैया पर विष्णु भगवान शांत चित्त से सोए हुए हैं। 'शांताकारम् भुजगशयनम्' जो भुजंग के बिछौने पर शांति से शयन कर सकता है तो केवल भगवान हीं कर सकता है। मुझे व्यक्ति की प्रशंसा करने का बड़ा संकोच है। फिर भी मैं गुरुजी की तुलना भगवान विष्णु से करता हूँ।

श्री गुरुजी को पकड़ा, रात को दो बजे। क्या धारा लगाई ? ३०२ ! मानो गुरुजी ने ही हाथ में पिस्तौल लेकर गाँधीजी पर गोली दागी थी। अड़तालीस घण्टो के बाद सरकार की अकल ठिकाने आ गई और फिर उन्होंने वह धारा हटाई और प्रतिबंधक कानून के तहत उनको छः महिना जेल में रखा।

बाहर के लोगों ने गुरुजी को देखा नहीं था। तसवीर छपती नहीं थी। और गुरुजी की तसवीर निकालना बड़ा कठिन काम था। मैं उसका भुक्तभोगी हूँ। मैं तरूण भारत का संपादक था। गुरुजी केन्सर का ऑपरेशन करवा कर आए थे। मैंने सोचा चलो तसवीर लेलो गुरुजी की। मुम्बई से आ रहे थे, मेल से। फोटोग्राफर को भेजा। परमीशन ले ली थी सरकार्यवाह की। सरकार्यवाह बालासाहेब देवरस थे। फोटो तो ले ली। दोपहर चार बजे उनको मिलने के लिए गया। वह फोटोग्राफर को जानते थे। उन्होंने नाम लेकर मुझसे पूछा
वह संघ का स्वयंसेवक है क्या? मैंने कहा हाँ वह स्वयंसेवक है तो गुरुजी बोले, फिर उसने मेरी फोटो कैसे खींची। वह १९७० की बात है और १९४८ में तो कोई फोटो ही नहीं थी। एक फरवरी की रात दो-ढाई बजे जब वे जेल पहुँचे तब जेल के सुप्रिटेन्डेन्ट बहुत तगड़े थे। युनिफॉर्म पहने हुए थे। मेज पर जूते पहने पाँव रखे थे, सिगरेट पी रहे थे और कुर्सी पर रेले हुए थे। गुरुजी को उसने देखते ही कहा, "अच्छा!! तो आप है संघ के सरसंघचालक। हमको लगा कि इतने बड़े संगठन का सरसंघचालक कोई तगड़ा आदमी होगा" तो तुरन्त गुरुजी से जवाब आया 'अरे हमारे डॉक्टर साहब को यह बात पता होती कि सरसंघचालक तगड़ा होना चाहिए तो आप को बना देते या किसी भैंसे

को बना देते।' ऐसा कहते ही फटाक से पैर नीचे आ गए और कहा कुर्सी लाओ गुरुजी के लिए। यानी ऐसे भीषण प्रसंग से भी उनका संतुलन बिगड़ता नहीं था। श्री गुरुजी एक ऐसे विलक्षण पुरूष थे।

४ फरवरी १९४८ को संघ पर प्रतिबंध लगा। सरसंघचालक जेल में थे। उनकी मान्यता थी कि कानून का पालन करना चाहिए। अपनी सरकार है। संशय का कोहरा अपने आप छट जाएगा। यह निवेदन अपने वकील को दिया, किन्तु उस निवेदन को प्रकाशित करने वाला कोई अखबार नहीं था। केवल नागपुर के हितवाद नामक दैनिक ने प्रकाशित किया तो उस दैनिक को सरकार से नोटिस आया। कहा एक प्रतिबंधित संगठन के अधिकारी का निवेदन कैसे छापा। यानी कि सरकार की यह मंशा थी, कि लोगों तो मालूम न हो कि उन्होंने निवेदन दिया कि सब शाखाएँ बंद रखे और संघ की शाखाएँ चलती रहे ताकि कानून का भंग किया इसलिए हम उनको पकड़ सकेंगे। लेकिन शाखाएँ बंद हो गई। संघ को गांधी जी की हत्या के षडयंत्र में घसीटने के लिए सरकार ने बहुत उठा पटक की, २० हजार लोगों के घर की तलाशी ली गई। कितने बेवकूफ होते है पुलिस वाले, उसका एक उदाहरण मैं बताता हूँ। मराठी में एक गीत था, तब मकर संक्रान्ति हो गई थी। संक्रान्ति में तिल गुड खाते है। उसको 'गोड़' बोलते है मराठी में। 'करूनि घ्या गोड से '। यह जो हम आपको तिल गुड़ दे रहे है इसको मीठा मानकर ले लो। ऐसी गीत की पंक्ति थी। तो 'गोड़ से' आ गया 'मीठा जैसा' तो पकड़ लिया। धीरे धीरे बात स्पष्ट होती गई। जिन्होंने गांधीजी की हत्या की वे पकड़े गए। नाथूराम गोडसे भागा नहीं था। उन लोगों पर मामला चला फिर भी संघ पर से प्रतिबंध हटाया नहीं। छह महीनों बाद गुरुजी को छोड़ देना पड़ा। लेकिन कहा कि आप नागपुर से बाहर नहीं जाएँगे। गुरुजी ने सरदार वल्लभभाई को पत्र लिखा कि मुझे आपने जेल से रिहा किया है लेकिन मैं बड़े जेल में आया हूँ। बाद में गुरुजी को दिल्ली आने की अनुमति दी गई। गुरुजी दिल्ली गए। नेहरू जी से मिलना चाहते थे। उनसे समय माँगा तो नेहरू जी ने लिखा कि 'समय नहीं है। यह गृह मंत्रालय का मामला है आप गृहमंत्री से मिलिए। '

श्री गुरुजी गृहमंत्री सरदार पटेल से मिले। सरदार पटेल ने दो बार कहा कि संघ को कांग्रेस में विलीन होना चाहिए। मैं सरदार पटेल के पत्र का अंश ही पढ़कर सुनाता हूँ। ११ सितंबर १९४८ के सरदार वल्लभभाई पटेल के पत्र का वाक्य है, "मेरा पूर्ण विश्वास है कि आर.एस. एस. वाले अपने देशप्रेम को कांग्रेस में मिलकर ही निभा सकते है अलग होकर, या विरोध कर नहीं" २६ सितंबर को फिर पत्र लिखकर सरदार पटेल ने कहा "इन सब को देखकर मेरी आपको यह सलाह होगी कि संघ को नई नीति और नई रीति में लाने की जरूरत है। और नई नीति और नई रीति केवल काँग्रेस के नियमानुसार होगी।" यानी कि संघ पर से प्रतिबंध हटाने की शर्त यह हुई कि संघ को काँग्रेस में मिला दिया जाए। क्या काँग्रेस में विलीन होने के लिये संघ निकाला था। प्रतिबंध नहीं हटेगा यह स्पष्ट हो गया, लेकिन गुरुजी डटे रहे दिल्ली में। उन्होंने साफ कह दिया कि, जब तक न्याय नहीं मिलेगा मैं दिल्ली छोडूंगा नहीं। और सरकार की तरफ से बताया गया कि आप नागपुर से जिस काम के लिए आए थे वह काम हो गया है। आप नागपुर लौट जाइए। श्री गुरुजी

नहीं माने तो उनको पकड़ा गया। १८१८ का अंग्रेजों का जो काला कानून था, उसके तहत पकड़ा गया। बाद में नागपुर लाया गया। थोड़े दिन नागपुर की जेल में रखा गया। बाद में बैतूल की जेल में रखा। अब प्रतिबंध हटाने के लिए सत्याग्रह के अलावा कोई चारा नहीं बचा। गुरुजी ने सत्याग्रह की अनुमति दी। उस जत्र में वे लिखते हैं – "यह धर्म का अधर्म से, न्याय का अन्याय से, विशालता का क्षुद्रता से तथा स्नेह का दुष्टता से सामना है। विजय निश्चित है क्योंकि धर्म के साथ श्री भगवान और उसके साथ विजय रहती है। तो फिर हृदयाकाश से जगदाकाश तक भारतमाता की जयध्वनि ललकार उठे और कार्य पूर्ण करके ही रहे। "

९ दिसम्बर के दिन से सत्याग्रह शुरु हो गया। लोगों ने मखौल उड़ाया कि ये सत्याग्रह को क्या जानें ये तो मारपीट जानते है। जनता को भी लगा कि सत्याग्रह क्या करेंगे। उनको विश्वास ही नहीं था। नेहरुजी ने कहा दो-चार हजार लड़के सत्याग्रह करेंगे किन्तु साठ हजार लोगों ने सत्याग्रह किया। काँग्रेस के किसी भी आन्दोलन में इतने लोग नहीं जुटे थे। और सत्याग्रह शांति से हुआ। अपनी तरफ गुजरात में, महाराष्ट्र में अत्याचार नहीं हुए, मद्रास में हुआ। हम सत्याग्रह करते थे, यानी क्या करते थे ? गुरुजी का आदेश था शाखा लगाओ। हम शाखा लगाते थे। सीटी बजाते थे, अग्रेसरों को बुलाते थे, इतने में पुलिस आ जाती थी और पकड़ कर ले जाती थी। लेकिन मद्रास में पकड़ते नहीं थे। जो शाखाएँ लगाते थे उन पर लाठीचार्ज होता था। उनके सर फोड़े जाते थे। खून बहता था। उसका वर्णन 'हिन्दू' अखबार में आया जो संघ का पक्षधर नहीं था।

तो चला सत्याग्रह, साठ हजार गए जेलों में, फिर लोगों ने मध्यस्थता शुरू की। पुणे का केसरी अखबार जो लोकमान्य तिलक जी ने प्रारंभ किया था, उसके संपादक श्री ग.वि. केलकर थे। वे आए। गुरुजी से मिले। सरकार की अनुमति से मिले। गुरुजी को बोला सत्याग्रह वापस लेलो, बाद में सरकार बात करेगी। गुरुजी ने २२ जनवरी को सत्याग्रह समाप्त किया। यानी दिसम्बर के 23 दिन और जनवरी के २१ दिन कुल ४४ दिन सत्याग्रह चला। किन्तु सत्याग्रह वापिस लेने के बाद भी प्रतिबन्ध हटा नहीं। दैनिक 'हिन्दू' में संघ के स्वयंसेवक सत्याग्रहियों के उपर पुलिस बर्बरता के वर्णन पढ़कर, अंग्रेजों के जमाने के एडवोकेट जनरल टी.आर. व्यंकटराम शास्त्री ने 'हिन्दू' अखबार को एक पत्र लिखा। उसको पढ़कर कुछ संघ के कार्यकर्ताओं को लगा कि उनके मन में संघ के बारे में अच्छे विचार है। संघ के भूमिगत कार्यकर्ता उनसे मिले। संघ का पक्ष उनके सामने रखा। उन्होंने कहा – मैं मध्यस्थता करूँगा। और मध्यस्थ बन कर आए। सरकार ने कहा संघ का संविधान लिखित नहीं है। वह होना चाहिए तब प्रतिबंध हटाया जाएगा। व्यंकटराम शास्त्री गुरुजी से मिले। गुरुजी ने कहा हम पर इसलिए प्रतिबंध लगाया है क्या कि हमारे पास लिखित संविधान नहीं हैं ? गाँधीजी की हत्या में हमारा सहभाग है, यह आरोप लगाकर प्रतिबंध लगाया गया। और आठ महीने हो गये है उनके पास कोई प्रमाण नहीं मिला है। मैं बार बार कह रहा हूँ कि प्रमाण दो। किसी निष्पक्ष ट्रिब्यूनल के पास में, पंचाट के सामने सारा मामला भेजो, उसका निर्णय हम मान लेंगे। सरकार मामला किसी पंचाट को नहीं देती। स्वयं कोई प्रमाण देने के लिए

भी तैयार नहीं है। केवल आरोप की रट लगा रही है। हमारे पास लिखित संविधान नहीं है, इसलिए तो संघ पर प्रतिबंध नहीं लगाया गया था ? संघ २२ सालों से चल रहा है। उसके कार्य के नियम हैं। सरसंघचालक रहते है, सरकार्यवाह रहते है, प्रान्तसंघचालक रहते थे, प्रान्त कार्यवाह रहते थे। यह सच है कि वह लिखित नहीं है। किन्तु व्यंकटराम शास्त्री का बड़ा आग्रह रहा कि संविधान लिख कर दे दो। गुरुजी नें संविधान लिख कर दे दिया। अब सरकार ने उसमें भी दोष निकालना शुरू किया।

बड़ी विचित्र परिस्थिति थी। संघर्ष सरकार के साथ करना था। और सरकार अपनी थी। गुरुजी को इस सरकार के लोगों पर बड़ी आस्था थी। मैंने नजदीक से देखा है इसलिए मैं कहता हूँ। नेहरूजी के बारे में भी वे अच्छी ही बात करते थे। कड़ी से कड़ी आलोचना करते थे, लेकिन घृणा का एक शब्द नहीं। सरदार वल्लभभाई के बारे में तो अत्याधिक आदर था। राजेन्द्रबाबू के बारे में भी। लेकिन संघर्ष हो गया। यह बड़ा विषम संघर्ष था। एक तरफ लार्ड माउन्ट बेटन अपने गवर्नर जनरल, पंडित नेहरू प्रधानमंत्री, सरदार वल्लभभाई पटेल हमारे गृहमंत्री और उपप्रधानमंत्री और उनकी सेवा के लिए उपस्थित ICS की फौज। जो ICS अंग्रेजों की सरकार चलाते थे। The Steel frame of British Empire ऐसा उसका वर्णन किया जाता था। और विपक्ष में कौन ? एक गुरुजी, वह भी जेल में बंद। जो न किसी से सलाह कर सकते थे।

जेल में श्री गुरुजी का भारत सरकार से यह जो पत्राचार हुआ वह हम सभी ने पढ़ना चाहिए। और गुरुजी जन्मशताब्दी में उसका पारायण करना चाहिए। यह विषम संघर्ष चला। एक ओर पंडित नेहरू, माउन्टबेटन, सरदार और आई.सी.एस. की फौज और दूसरी ओर अकेला माधव सदाशिव गोलवलकर बैतूल की जेल में बंद। इस संघर्ष में गुरुजी विजयी हो गए। संविधान दे दिया। व्यंकटराम शास्त्री संविधान ले गए। सरकार ने संविधान लौटा दिया कहा कि गुरुजी की तरफ से आना चाहिए। वापस आए फिर गुरुजी ने अपने हस्ताक्षर करके संविधान भेजा। संविधान में दोष निकालना शुरू हो गया कि सरसंघचालक का चुनाव नहीं हैं सब नियुक्तियाँ होती है। आजन्म प्रतिज्ञा है ऐसी प्रतिज्ञा तो केवल गुप्त संस्थाओं में (सीक्रेट सोसायटी) में ही होती है। संघ में छोटे बच्चों को आप स्वयंसेवक मानते है और फिर वही आरोप कि आप हिंसा पर विश्वास रखने वाले है। तो गुरुजी ने एक पत्र लिखा। आखिर का पत्र। कि यह आरोपों की पुनरुक्ति नहीं की जानी चाहिए। आठ महीनों से मैं आपसे प्रमाण माँग रहा हूँ। आप प्रमाण दे नहीं रहे हैं और आरोप लगा रहे हैं। यह किसी सभ्य सरकार को शोभा देने वाली बात नहीं हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलेगा कि सरकार का सत्य और न्याय के ऊपर विश्वास नहीं रहा है। सरकार इस पत्र को पाकर चिढ़ गई। कहा कि प्रतिबंध नही हटेगा। लेकिन वह हटा। वह सारा वर्णन कल के भाषण में।

२ श्री गुरुजी व्याख्यान माला - दिनांक १८-२-२००४

वक्ता - मा. गो.वैद्य
स्थान - टैगोर हॉल, कर्णावती

कल के भाषण में मैंने विषम संघर्ष की बात की थी। जहाँ एक ओर श्री सरदार पटेल, पंडित नेहरू जैसे लोकप्रियता के शिखर पर आरूढ़ स्वातंत्र्य सेनानी और पूरे आइ.सी.एस. की यंत्रणा थी और विपक्ष में कारागृह में बंद संन्यासी सरसंघचालक जिनको सार्वजनिक जीवन का कोई अनुभव नहीं था, ऐसे एक विषम संघर्ष की कहानी मैंने प्रस्तुत की थी और परिणाम भी बताया कि संन्यासी विजयी हुआ। जब सत्याग्रह का उन्होंने आवाहन किया तब उन्होंने कहा था, कि संघर्ष में विजय निश्चित है क्योंकि सत्य हमारे साथ है और जहाँ सत्य होता है वही भगवान रहता है। और जहाँ भगवान रहता है वहाँ विजय भी रहती है। १३ जुताई को उनकी रिहाई हो गई तो, पूरे भारत के प्रवास की एक योजना बनाई गई। बहुत बड़ी संख्या में जनता उनके स्वागत के कार्यक्रमों में आती थी। नागपुर का कार्यक्रम मैंने देखा। लेकिन दिल्ली का कार्यक्रम का वर्णन मैंने पढ़ा। केवल अपने देश के अखबारों ने ही नहीं, विदेश के अखबारों ने भी, सभी प्रसार माध्यमों ने बताया कि इतनी भारी संख्या किसी एक व्यक्ति के स्वागत के लिए उपस्थित होना और वह भी जो सत्ता में नहीं है, एक प्रकार से आश्चर्य है। बीबीसी ने तो यहाँ तक कहा कि केवल पंडित नेहरू के कार्यक्रम में ही इतनी भीड़ जुट सकती थी। दिल्ली में ही नही हर प्रांत की राजधानी में उनका प्रवास हुआ। लोखो लोगों ने उनको सुना। संघ पर प्रतिबंध अन्यायपूर्ण था। गुरुजी का कारावास यह भी अन्यायपूर्ण था, लेकिन इस अन्याय के शिकार होने के बावजूद भी गुरुजी के मुख से न सरकार के विरोध में, और न जनता के विरोध में एक शब्द निकला। जब संघ के कार्यालयों के उपर, संघ के स्वयंसेवकों के मकानों के उपर, खास करके महाराष्ट्र में भीषण हमले हुए। करोड़ों की संपत्ति जलाई गई, नष्ट की गई, तब भी उन्होंने कभी घुस्सा नहीं प्रकट किया। केवल यही कहते रहे कि दातों तले अगर जिव्हा आ जाती है तो जिव्हा को कष्ट जरूर होता है लेकिन दांत गिराए नहीं जाते। तो एक प्रकार से अत्यंत सहिष्णु, अत्यंत उदार भाव से गुरुजी पेश आए। उनके सारे भाषण इसी प्रकार से हुए, जो हो गया, वह हो गया, भूल जाओ और काम में लग जाओ।

अब वातावरण बदल गया था। नये विचार मन में आना शुरू हुआ। संघ पर जब प्रतिबंध आया तब स्वतंत्रता मिले केवल पाँच-छह महिने हुए थे। संघ की प्रतिज्ञा में एक विशेष वाक्य था जो आज की प्रतिज्ञा में नहीं है। और वह था कि 'हिन्दू राष्ट्र को स्वतंत्र करने के लिए मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का घटक बना हूँ।' तो चर्चा होना तो स्वाभाविक है कि अब संघ का काम क्या है ? संघ की अब आवश्यकता क्या है ? जिनके घरों पर हमले हुए थे, जो जख्मी हुए थे वे तो यही कहते थे कि अब इसकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। संघ अब खड़ा नहीं हो सकता। लोकिन हो गया। कल मैंने सरदार पटेल के दो पत्रों को आपको पढ़कर सुनाया था कि संघ काँग्रेस की नीति और रीति पर चल कर ही देश का भला कर सकता है। १९५० के

नवम्बर में अपने देश का नया संविधान आया। नयी पार्टियाँ बनने लगी। काँग्रेस से लोग अलग होने लगे। आचार्य कृपलानी, जो कई वर्षों तक काँग्रेस के महासचिव रह चुके थे, उनकी प्रजापार्टी बन गई। फिर समाजवादी पार्टी अलग हुई। जो काँग्रेस का हिस्सा थी। १९४२ तक साम्यवादी भी काँग्रेस में शामिल थे। वे भी अलग हो गये। तो अपने लोगों को भी लगा कि हिन्दुत्व का विचार लेकर एक राजनीतिक पक्ष बनाना चाहिए। हिन्दूसभा थी लेकिन गांधीजी की हत्या में उनके बड़े बड़े लोगों का नाम आने के कारण उसका कोई भविष्य नहीं है, ऐसा सबका मुल्यांकन था। इतने में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी आए। उन्होंने कहा कि ऐसी एक पार्टी बनानी है जो भारतीय परंपरा, संस्कृति और भारतीय मूल्यों को लेकर खडी होगी। अब अपने हाथ से देश का भाग्य बनाने का मौका आया है उस प्रकार हम देश का भाग्य निर्माण करेंगे। वह गुरुजी के पास आए। कुछ कार्यकर्ताओं की माँग की, उनको कार्यकर्ता दिए गये। १९५१ में जनसंघ की स्थापना हुई। ५२ के चुनाव आए।

जनसंघ सभी प्रांतों में नहीं पहुँचा था। जहाँ पहुँचा था वहाँ वह चुनाव लड़ा किन्तु अपेक्षित सफलता नहीं मिली। महाराष्ट्र के आधे से अधिक से ज्यादा भाग में जनसंघ नहीं था। विदर्भ में था, उत्तर प्रदेश में था, पंजाब में था। प्रतिबंध के समय श्री गुरुजी ने सरकार को जो पत्र लिखे थे उन पत्रों में यही उन्होंने कहा था कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर संघ और सरकारी स्तर पर सरकार इन दोनों को मिल कर काम करना चाहिए। क्योंकि साम्यवाद नाम की बाहरी शक्ति है उसका फैलाव हो रहा है। देखते है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद रूस ने अपना साम्राज्य फैलाने का सोचा। पोलेण्ड, युगोस्लाविया, अलबानिया, बलगेरिया, हंगेरी और झेकोस्लोवाकिया में वह फैलता गया। जर्मनी में भी फैलता गया। एंग्लो अमेरिकन चिन्ताक्रान्त हो गए। उनको लगा कि उसको रोकना चाहिए। जर्मनी का विभाजन हो गया। ईस्ट जर्मनी उनके कब्जे में रहा और वेस्ट जर्मनी एंग्लो अमेरिकन के कब्जे में रहा। जर्मनी की राजधानी थी बर्लिन उसके भी दो टुकडे हो गए और बीच में दीवार हो गई। ईस्ट बर्लिन साम्यवादिओं के पास और वेस्ट बर्लिन एंग्लो- अमेरिकन के पास। और केवल युरोप में ही संघर्ष नहीं चला। १९५० में चीन में क्रांति हो गई। रूस के जो लोग थे उनकी देशभक्ति के कारण उनके पराक्रम पर युद्ध जीता था। लेकिन प्रचार ऐसा किया गया कि यह जो मार्क्स का सिद्धांत है मार्क्सवाद, साम्यवाद उसके कारण यह हुआ। उसको फैलाने में यह आवश्यक था। कोरिया में, वियेतनाम में, इन्डोनेशिया में भी खेल शुरू हो गया और देखते देखते पूरा वियेतनाम कम्युनिस्ट बन गया। पूरा कोरिया बन सकता था, लेकिन आधा ही बना। क्योंकि अमेरिका ने अपनी सेना वहाँ भेजी। कोरिया की सहायता की। इसलिए आज दक्षिण कोरिया और उत्तर कोरिया बन गए है। बीच में यालू नाम की नदी है। आफ्रिका में भी रूस ने पैर फैलाना शुरू किया। इस प्रकार साम्यवाद का तरूणों में बहुत बड़ा आकर्षण था। गुरुजी ने लिखा कि यह भौतिक सिद्धांत है। जो समाज के कल्याण का नहीं है। वह इस प्रकार का सिद्धांत है कि जो मनुष्य को किसी यंत्र का पुर्जा मानता है। उसकी भाव-भावनाओं की अनदेखी करता है। उसकी कोई किमत नहीं रहती। और यह तानाशाही का समर्थन करने वाला सिद्धांत है। हिंसा का गौरव करने वाला सिद्धांत है। कम्युनिस्टोंने भी इसे छिपाकर नहीं रखा। हिंसा आवश्यक है ऐसा मार्क ने कहा लेनिन ने कहा, स्टालिन ने कहा और वही १९८५ तक

कहते गए कि हिंसा आवश्यक है। यह भी कहते गए कि यह जो डेमोक्रसी है, जनतंत्र है वह बूर्ज्वा है। यहाँ तो वर्कर्स डेमोक्रेसी चाहिए। और वह तभी आएगी जब उसके पहली सीढ़ी के तौर पर सर्वहारा की तानाशाही प्रस्थापित होगी तभी डेमोक्रसी, सही जनतंत्र आ सकेगा। डिक्टेटरशिप ऑफ प्रोलेटेरिएट यह भी एक सिद्धांत हो गया। माने ग्लोरीफिकेशन ऑफ वायोलन्स, डिक्टेटरशिप ऑफ प्रोलेटेरिएटये मूलभूत सिद्धांत बन गये। और समाज में बदलाव लाना है तो लड़ाई के सिवाय कोई चारा नहीं है। इस प्रकार के सिद्धांत का बोलबाला था। तब गुरुजी ने लिखा कि केवल अपने देश में ही नहीं चारो ओर यह फैल रहा है। तो सरकार के साथ सरकारी स्तर पर सरकार और सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर हम काम करें तो इस खतरे से हम बच सकते हैं। लेकिन यह कहने से प्रतिबंध नहीं हटा। तो हमें लगा कि राजनैतिक क्षेत्र में हमें जाना चाहिए। हमारा भाग्य विधाता हमें ही बनना चाहिए। और कम्युनिज़म के कारण, समाजवाद के कारण यह सिद्धांत चल रहा था कि राज्य ही सब कुछ अच्छा कर सकता है। लेनिन ने जो भी वाक्य रखा उससे अधिक लुभावना किसी पार्टी का मेनीफेस्टो हो सकता है ऐसा मुझे नहीं लगता। लेनिन ने क्या कहा? हम रूस में आए हैं, राज्य चलाते हैं। लोगों से हम उतना ही लेंगे जितनी उनकी क्षमता है, और लोगों को उतना देंगे जितनी उनकी आवश्यकता है।

from every one according to his capacity
and to every one according to his needs

इससे अच्छा कोई घोषणा वाक्य हो सकता है, ऐसा मुझे नहीं लगता। चार साल का लड़का है जो दे नहीं सकता लेकिन उसकी आवश्यकता है, नीड्स है तो वह सरकार देगी। कपड़ा चाहिए, सरकार कपड़ा देगी। मकान चाहिए, सरकार मकान देगी। शिक्षा चाहिए, सरकार शिक्षा देगी। रोजगार देगी। यानी सरकार सबकुछ देगी। सरकार सबकुछ कर सकती है। बहुत लोग रूस गए। वहाँ के हालात देखे और प्रभावित भी हो गए। उन्होंने बहुत लिखा। सभी भाषाओं में लिखा। गुजराती में क्या लिखा पता नहीं। लेकिन अंग्रेजी में, हिन्दी में बहुत कुछ लिखा गया। और लिखा, देखो रूस का मोडल, राजसत्ता के द्वारा सब कुछ हो सकता है और सत्ता के बिना कुछ नहीं हो सकता। इस लिये सत्ता की जो महत्ता है उसे प्रकट करनेवाला विचार सब जगह चल रहा था, तो उसका कुछ न कुछ संघ में कार्य करनेवालों पर भी पड़ना स्वाभाविक था। अखिर वह लोग भी विचार करते थे। हम भी विचार करते थे कि ऐसा क्यों नहीं करना चाहिए। समाजवाद को क्यों नहीं अपनाना चाहिए? ठीक है ग्लोरीफिकेशन ऑफ वायोलन्स नहीं। हिंसाचार का गौरव हम नहीं करेंगे। लेकिन जो समाजवाद है उसका लोकतंत्र से कोई विरोध तो नहीं है। डेमोक्रटिक सोश्यालिजम है। उसको भारत ने भी अपनाया था। बाद में अपनाया लेकिन बात तो उस समय से चली थी।

इस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में स्वयंसेवकों का पदार्पण हुआ। जनसंघ की स्थापना १९५१ में हुई। किन्तु उसके पूर्व विद्यार्थी परिषद की स्थापना हुई थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात साम्यवाद का बोलबाला शुरू हो गया था। रूस, इंग्लैंड और अमेरिका के दोस्ती के कारण विजयी हुआ था। किन्तु प्रचार ऐसा किया जा रहा था कि यह साम्यवाद के सिद्धांत की विजय है। युद्ध के पश्चात रूस ने अपना साम्राज्यवादी शिकंजा फैलाना शुरू किया था। पोलैंड, झकोस्लाव्हाकिया, युगोस्लाव्हिया, रूमानिया, अल्बानिया, हंगेरी, बल्गेरिया पर उसने अपना

प्रभुत्व जमाया। जर्मनी की ओर भी वह आगे बढ़ता गया। फिर एँग्लो अमेरिकनों ने उस खतरे को पहचान कर अपना अभियान शुरू किया। अतः आधा जर्मनी बचा। ऑस्ट्रिया बचा। ग्रीस भी सुरक्षित रहा।

इधर चीन में भी क्रान्ति हो गई थी। और वहाँ भी साम्यवाद को माननेवाले विजयी होकर सत्ताधारी बन गये थे। चीन ने भी अपने हाथपाँव फैलाना शुरू किया। विएतनाम, कोरिया उसके आघात के निचे परास्त हुये। जर्मनी की भाँति उनके भी दो टुकडे हो गये। एक रूस और चीन को अनुकूल तो दूसरा एँग्लो अमेरिकनों को अनुकूल।

साम्यवाद का खतरा दुधारी खतरा था। एक ओर लड़ाई सिद्धांत की थी तो दूसरी ओर नये आक्रमक साम्राज्यवाद से लडना था। श्री गुरुजी ने संघपर लगा प्रतिबन्ध हटाने के लिए जो पत्र पं. नेहरू और सरदार पटेल तो लिखे थे, उनमें इस खतरे का निर्देश उन्होंने किया था और यह भी लिखा था कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर संघ और राजनीतिक स्तर पर सरकार इन दोनों को मिलकर काम करना चाहिए और साम्यवाद के खतरे का सामना करना चाहिए। नेहरूजी तो साम्यवाद को खतरा ही नहीं मानते थे। अतः श्री गुरुजी का यह आवाहन निरर्थक रहा। तरूणों को साम्यवाद का अत्याधिक आकर्षण था। उस को रोकने की आवश्यकता थी। इस हेतु विद्यार्थी परिषद का गठन हुआ।

श्री गुरुजी ने साम्यवाद की सैद्धान्तिक आलोचना की। उन्होंने बताया कि यह मात्र भौतिक सिद्धान्त है। यह मानवजीवन का एकांगी रूप का ही ध्यान रखता है। उसके सकल स्वरूप का विचार ही नहीं करता, वह मानव को एक सत्ताकेन्द्र का निर्जीव पुर्जा मानता है। उस की भावभावनाओं की अनदेखी करता है। मानव केवल शरीर नहीं, मन, बुद्धि और आत्मा भी है। साम्यवाद की दूसरी अपूर्णता यह है कि वह हिंसा को गौरवान्वित करता हैं। हिंसा अनिवार्य समझता है। और तीसरी अनिवार्यता यह है कि सब कुछ सत्ता के अधीन कर दो, सरकार सब का सब दृष्टि से भला करेगी यह उसकी मान्यता है। साम्यवादी रूस की घोषणाएं सचमूच बड़ी आकर्षक और लुभावनी रहती थी।

साम्यवाद यह भी कहने लगा था कि दुनिया में पूंजीवादी व्यवस्था में जो जनतंत्र है वह नकली जनतंत्र है। सही जनतंत्र साम्यवाद ही लाएगा। वहाँ peoples Democracy होगी। वह तुरन्त नहीं आयेगी। पहली सीढ़ी के तौर पर प्रथम सर्वहारा की तानाशाही (Dictatorship of the proletariat) लानी होगी। तानाशाही के जरिए जनतंत्र की स्थापना यह एक वैचारिक विसंगति है। किन्तु उस विसंगति को किनारे रख कर तरूण, बुद्धिजीवी साम्यवाद की ओर दौड़ रहे थे। अनेक बड़े बड़े लोग रूस जाते थे। वहाँ की रचना देख कर प्रभावित होते थे। और रूस के मॉडेल की प्रशंसा करते थे। कहते थे कि देखो राजसत्ता प्राप्त करके किस प्रकार लोगों को सुखी किया जा सकता हैं।

इस दौड को रोकना आवश्यक था। राजसत्ता सब कुछ कर सकती है, इस भूल को दूर करना आवश्यक था। राजसत्ता का आकर्षण स्वयंसेवको भी लगना स्वाभाविक था। जैसा कि पहले

बताया कि संघ की प्रतिज्ञा में हिन्दू राष्ट्र को स्वतंत्र करने के लिएमैं संघ का घटक बना हूँ यह वाक्य था, तो स्वयंसेवक भी कहने लगे कि अब हिन्दू राष्ट्र स्वतंत्र हो गया है, अब संघ की क्या आवश्यकता है? भले ही राज्यकर्ता लोग काँग्रेस के होंगे, किन्तु वे हिन्दू ही तो है। उन के मन के अंदर यह भी भाव था कि, चूंकि मुसलमानों की इच्छा के अनुसार उनको पाकिस्तान मिल गया है, तो उनका समाधान हो गया है और मुसलमानों की समस्या अब समाप्त हो गई है।

सत्ता की चाह आकर्षक होती है। वातावरण भी ऐसा बना था कि सत्ता के द्वारा समाज की सारी समस्याओं का इलाज हो सकता है। अतः आवश्यकता सत्ता प्राप्त करने की है। उस हेतु राजनीति में प्रवेश करना चाहिए। हमने जनतंत्र को अपनाया है। अतः राजनीतिक कार्यक्रम को स्वीकार कर पूरी शक्ति के साथ राजनीतिक क्षेत्र में कूदना चाहिये। अब प्रतिदिन की संघ शाखा की पद्धति की कोई आवश्यकता नहीं। दक्ष-आरम् बहुत हो गया। यदि वह चालू रखना है तो अवश्य रखें किन्तु समाज जीवन के अन्य आयामों के प्रति भी सजग रहना आवश्यक है। वे यह मानने के लिए तैयार थे कि संघ एक विश्वविद्यालय के समान है, जहाँ सामाजिक और राष्ट्रीय चारित्र्य की शिक्षा प्राप्त होती है। किन्तु वे सवाल करते थे कि यह कौनसा विश्वविद्यालय है जो जिन्दगीभर विद्यार्थी को विद्यार्थी ही रखना चाहता है? विश्वविद्यालय की शिक्षा पाकर विद्यार्थी उसके बाहर चले जाते हैं।

इन सब विचारों का प्रकटीकरण समाचारपत्रों में भी होने लगा। मैं १९५० और १९५३ में पुणे में संपन्न संघ शिक्षा वर्ग में मुख्य शिक्षक के नाते भेजा गया था। उस समय ये सारे विचार पुणे से प्रकाशित होने वाले 'केसरी' नामक समाचार पत्र में, जिसकी स्थापना लोकमान्य तिलक ने की थी, प्रकाशित होते थे। १९५० के वर्ग में जो मेरे सहकारी शिक्षक थे, प्रचारक थे, उनके मूँह से भी ऐसी बाते मैंने सुनी। वे संघ कार्य से अलग हो गये। उन्होंने विवाह नहीं किया। स्वार्थ उनके मन को छुआ नहीं। किन्तु वे संघकार्य को अपर्याप्त समझते थे। एक ने हरिजनों के लिए सहकारी कृषि संस्था निकाली। बहुत अच्छा काम किया है इस संस्था ने। अन्य ने ज्ञानप्रबोधिनी नामक शिक्षा संस्था खोली। बहुत अच्छा नाम है इस संस्था का। गुरुजी इन कार्यों की सराहना करते थे। किन्तु वे इस पर दृढ़ थे कि ये संघ के पर्याय (Substitute) नहीं हो सकते। आनुषंगिक ही हो सकते हैं।

प्रतिबंध हटने के बाद, श्री गुरुजी का स्थान स्थान पर जो भव्य स्वागत हुआ, लाखों की भीड जो उनका भाषण सुनने के लिए एकत्रित आई, उस पर से अनेकों ने संघ की लोकप्रियता के ऊँचे ऊँचे अंदाज लगाये। यहाँ तक वे कहने लगे कि बस राजनीति में पूरी शक्ति के साथ कूदने की आवश्यकता है। सत्तासुन्दरी हाथ में वरमाला लेकर प्रतीक्षा कर रही हैं।

श्री गुरुजी की विशेषता यह है कि वे इन आघातों से तनिक भी विचलित नहीं हुए। जिनको देखने और सुनने के लिए भीड़ एकत्रित होती थी, उनका यह आकलन था, यह इस आकलन की विशेषता है। उस अति उत्साह भरे वातावरण में गुरुजी कहते थे मुझे अच्छी शाखा चाहिए। प्रतिबंध के काले काल में शाखा की व्यवस्था ढीली पड़ी थी। उसको ठीक और चुस्त

करना आवश्यक था। गुरुजी का जोर उसपर था। सारे लोग राज्य की शक्ति का विचार करते थे। गुरुजी राष्ट्र की शक्ति का अग्रक्रमसे विचार करते थे। मूलभूत राष्ट्रशक्ति के बिना अन्य सब प्रकार की शक्तियाँ, फिर वे आर्थिक शक्ति हो, राज्य की शक्ति हो या सेना की शक्ति हो, कारगर नहीं हो सकती इस पर उनका अटल विश्वास था। हवा में उडान वे समझ सकते थे। किन्तु जमीन पर पाँव पक्के रहे इसकी वे ज्यादा चिन्ता करते थे। वड्स्वर्थ नामक एक अंग्रेज कवि की स्कायलार्क पक्षी के बारे में एक सुन्दर कविता है। कवि स्कायलार्क को बुद्धिमत्ता का नमूना मानता है। क्यों कि वह आकाश में बहुत ऊँचा उड़ता है किन्तु भटकता नहीं। पृथ्वी और स्वर्ग दोनों तरफ उसकी निगाह रहती है। कवी के शब्द हैं

Type of the wise, who soar but never roam
True to the kindred points of heaven and home

श्री गुरुजी की भी इसी प्रकार चारों ओर नजर रहती थी। नीचे की वास्तविकता को उन्होंने कभी नजर अंदाज नहीं किया और न उच्च आदर्श को आँखों से ओझल होने दिया।

अपने संघ का नाम राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। विचारपूर्वक वह नाम रखा गया है। उस नाम का एकेक शब्द महत्व का है। श्री गुरुजी संघ शिक्षा वर्गों में इस एक नाम पर तीन दिन तक बौद्धिक वर्ग में भाषण देते थे। संघ स्थापना के पूर्व 'स्वयंसेवक' शब्द का एक सामान्य अर्थ था – स्वयंसेवक यानी सीने पर बिल्ला लगा कर कुर्सियाँ लगानेवाला, दरियाँ बिछानेवाला, नेताजी की जयकार करनेवाला, निःशुल्क व्यक्ति। डॉक्टर हेडगेवार ने इस अर्थ को बदला। स्वयंसेवक याने राष्ट्रभक्त नागरिक, जो स्वयंप्रेरणा से देश की सेवा करेगा। स्वयंसेवकों का संघ किसी राजनीतिक दल का दास नहीं बनेगा। १९४९ के दिवाली के अवसरपर, मैं जिस शाखा का अधिकारी था, उस शाखा के स्वयंसेवकों के सामने श्री गुरुजी के तीन भाषण हुये। उन भाषणों में उन्होंने साफ तौर पर कहा, 'मेरे स्वागत के लिए यह जो सारी भीड़ एकत्रित हुई, उस पर से संघ की लोकप्रियता का आकलन करना गलत है। मुझे अच्छी शाखा चाहिए। जब मैं अच्छी शाखा देखता हूँ तो मेरे शब्दों में बल आता है। लोग पूछते हैं कि दक्ष-आरम् से क्या होगा। मैं कहता हूँ कि दक्ष-आरम् से ही सब कुछ होगा।' वे छोटी छोटी बातों का बहुत ध्यान रखते थे। एक बार वे पुणे गये तो एक प्रभात शाखा के लोग, उनका स्वागत करने के लिए स्टेशनपर पहुँचे। तो बहुत नाराज हो गये। उन्होंने उनको फटकार कर शाखा छोडकर क्यों आये यह पूछा। और सवाल किया कि आप क्या मुझे नेता समझते हैं?

१९५० का पुणे का संघ शिक्षा वर्ग अजीब ढंग से संपन्न हुआ। शिक्षार्थिओं के निवास के लिए कोई विद्यालय नहीं मिला। अनेक स्थानों पर स्वयंसेवक रहते थे। संघस्थान के कार्यक्रम के लिए किसी भी विद्यालय ने अपना मैदान नहीं दिया। आज जहाँ 'पेशवे बाग' नाम का सुंदर उद्यान खड़ा है, वह एक कटीली, पथरीली, उबडखाबड जगह थी। वहाँ पर जगह मिली। पहिला कालांश जगह साफ करने में व्यतीत होता था। बौद्धिक वर्ग में सीआयडी का एक आदमी उपस्थित रहेगा, यह शर्थ थी। जाधव नाम का एक व्यक्ति भाषणों के नोट्स लेने के लिए आता था। कुछ दिनों के बाद उसने नोट्स लेना बंद किया। मैंने पुछा ' जाधवजी, आप नोट्स नहीं ले रहे हैं?' तो उन्होंने उत्तर दिया ' क्या लिखना समझता नहीं, सब लोग वही वही बात बताते हैं।' मैंने पुछा 'फिर आप रिपोर्ट क्या करते है।' उन्होंने उत्तर दिया 'मैं आप से वक्ता का

नाम पूछता हूँ। उनका परिचय लिखता हूँ और अन्त में लिख देता हूँ कि उन्होंने ने आज संघ के बारे में जानकारी दी। बस्स। इससे मेरा काम बन जाता है।'

शिक्षार्थिओं के लिए सरकारी राशन दुकानों से नियंत्रित मात्रा में अनाज मिलता था। वह बहुत निम्न दर्जे का रहता था। लाल रंग का चावल, लाल मिलो की रोटी। वह भी अपर्याप्त। सप्ताह में एक दिन शिक्षार्थिओं को भोजन के लिए शहर में स्वयंसेवक के घरों में भेजना पडता था। श्री गुरुजी को एक अच्छे मकान में ठहराया गया था। हम शिक्षक भी और जगह रहते थे। श्री गुरुजी के भोजन की व्यवस्था उसी घर में की गई थी। किन्तु गुरुजी ने वहाँ भोजन लेने से मना किया। स्वयंसेवकों के साथ वे भोजन करने के लिए आया करते थे। शाखा के प्रत्येक छोटे-मोटे कार्यक्रम की महत्ता वे अधोरेखित करने में कभी नहीं चूकते थे।

श्री गुरुजी का संघ की शाखा कार्यपद्धति की प्राथमिकता का आग्रह, स्वयं का आचरण तथा बौद्धिक वर्गों में उद्-बोधन निरन्तर चल रहा था। उसी समय १९५२ का निर्वाचन आया। राजनीति का आकर्षण जिन्हें था उनको अपनी लोकप्रियता को नापने का, अनुभूत करने का मौका मिला। श्री गुरुजी इस वातावरण से दूर रहने हेतु स्वयं सिंहगड चले गये। करीब एक माह वे वहाँ रहे। इधर चुनाव का घमासान चालू था। जनसंघ के लिए परिणाम अत्यंय निराशाजनक रहे। जिस पंजाब के लोगों की स्वयंसेवकों ने जी जानसे सेवा की थी, जिनकी रक्षा करने के लिए प्राणों का बलिदान किया था, जिनको बसाने के लिए अपरिमित कष्ट उठाए थे, उस पंजाब में भी जनसंघ को एक भी स्थानपर विजय नहीं मिली। विदर्भ में भी वही हाल रहा। बंगाल में दो स्थान मिले। इस का कारण डॉ. श्यामाचरण मुखर्जी का व्यक्तिगत प्रभाव था। वहाँ से डॉ. मुखर्जी और बॅ. चॅटर्जी चुनाव जिते। मध्य प्रदेश के मन्दसोर से बॅ. त्रिवेदी जीतकर आये। बस।

इस पराजय के बाद भी राजनीति का आकर्षण कम हुआ ऐसी बात नहीं थी। उसमें केवल स्वार्थ था यह भी बात नहीं थी। राजनीति के क्षेत्र के प्रभाव का महत्व अनेक अच्छे अच्छे कार्यकर्ताओं के मनपर अंकित था। राजकीय सत्ता समाज में, समाज के चरित्र में परिवर्तन ला सकती है, यह उनकी मान्यता थी। उनके सामने रूस का उदाहरण था। उनको लगा कि साम्यवाद का आधार लेकर रूस इस प्रकार बढ़ सकता है, दुनिया की बड़ी शक्ति बन सकता है, तो भारतीयता का आधार लेकर हम भी भारत को शक्तिसंपन्न बना सकते है। अतः संघ ने अपनी सारी शक्ति राजनीतिक शक्तिसंपादन में लगाना चाहिये, यह उनका मत था। गुरुजी इसके साथ सहमत नहीं थे।

आज पचास साल के बाद हम रूस की हालात देख सकते हैं। सत्तर वर्षों तक निरंकुश सत्ता हाथ में होने के बावजूद, शस्त्रों का अंबार होने के बावजूद, चन्द्रमा पर आदमी को भेजने तक की विज्ञान की उपलब्धि प्राप्त करने के बावजूद, रूस का अधःपतन हुआ। समाज का चरित्र नहीं बदला। वर्ग मिटाने के लिए जो निकले थे वे स्वयं नये वर्ग के जन्मदाता बन गये। हम लोगों ने यह हकीकत १९८५ के बाद देखी। श्री गुरुजी की ऋतंभरा प्रज्ञा ने उसको १९५० के दशक में ही देखा था। उस समय उन्होंने कहा कि राजनीति याने जीवन – सर्वस्व नहीं है।

जीवन का वह एक अंग हैं। वह अंगी नहीं हैं। अंगी समाज है, राष्ट्र है। समाजजीवन के अनेक अंग होते है। आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक, धार्मिक ऐसे अनेक अंग होते है। एक-एक अंग के अनेक उपांग होते है। आर्थिक क्षेत्र के उद्योग, व्यापार, किसान, मजदूर ये सारे उपांग है। शिक्षा क्षेत्र के विद्यार्थि, शिक्षक के उपांग है। सामाज एक व्यामिश्र (Complex) अस्तित्व होता है। ये सारे क्षेत्र वैसे स्वायत्त हैं, स्वतंत्र हैं। वे सजा के डर से चलनेवाले क्षेत्र नहीं हैं। उन के नियम होते हैं, उनकी एक नीति भी होती है किन्तु उनके संचालन का आधार दण्डशक्ति (Coercive power) नहीं होता। ये सारे महत्व के क्षेत्र हैं। जो राष्ट्रभाव राजनीति के क्षेत्र के लिये आवश्यक है, वहीं भाव इन क्षेत्रों के लिये भी आवश्यक है। साथ ही, ये सारे क्षेत्र स्वायत्त और स्वतंत्र होते हुए भी वे परस्परानुकूल बनकर चलने चाहिए। उसी से राष्ट्र की शक्ति बढ़ेगी। रूस ने इन सब क्षेत्रों पर राजनीतिक अधिकार जमाया और सभी क्षेत्रों को सरकार के नियंत्रण में लाया। लोगों की अभिक्रम शक्ति (Initiative) ही क्षीण हो गई। राष्ट्र दुर्बल हो गया। जैसे पावर हाऊस में बिजली के निरन्तर निर्माण प्रक्रिया के बिना, ना कोई कलकारखाना चल सकता है, न बल्ब जल सकता है, ना कोई यंत्र चल सकता है, उसी प्रकार राष्ट्र की शक्ति के निर्माण की व्यवस्था के बिना कोई क्षेत्र सुचारू रूप से नहीं चल सकेगा। फिर पॉवर हाऊस से सब मशीनों तक, एकेक बल्ब और टयुब तक सम्पर्क सूत्र (Connection) चाहिये। तब मशीन चलेगी और बल्ब और टयुब उजाला देगी। श्री गुरुजी को राष्ट्र जीवन की ऐसी स्थिति अभिप्रेत थी। संघ की भूमिका पॉवर हाऊस जैसी है, यह उनकी मान्यता थी। उनका चिन्तन गहरा, मूलगामी, सर्वंकष और व्यापक था।

हमारे यहाँ और भी एक भ्रांति थी। वह आज भी है। अनेक बड़े-बड़े लोग राज्य को ही राष्ट्र मानते है। किन्तु राज्य (State) अलग है, राष्ट्र अलग (Nation) है। कई लोग आज भी मानते है कि १५ अगस्त १९४७ को नया राष्ट्र बन गया। महात्मा गांधी राष्ट्रपिता है। गौरव के लिए ऐसा कहने में आपत्ति नहीं। किन्तु यदि १५ अगस्त को हम राष्ट्र बने तो १४ अगस्त को हम क्या थे ? १५ अगस्त को राज्य बदल गया। राष्ट्र स्वतंत्र हुआ। वह बदला नहीं। राज्य बदलते हैं। उस की सीमाओं में बदलाव आता है। इसकी पद्धति में परिवर्तन आता है। पहले हमारे यहाँ राजतंत्र था, आज लोकतंत्र है। फ्रांस और अमेरिका में भी लोकतंत्र है किन्तु उसकी पद्धति अलग है। हमारी अलग है। कहीं पर फौजी तानाशाही है, कहीं पर सांप्रदायिक तानाशाही है, कहीं साम्यवादी पार्टी की तानाशाही है। ये पद्धतियाँ बदलती रहती है। राष्ट्र का स्वरूप नहीं बदलता। श्री गुरुजी ने समझाया कि संघ राष्ट्र का प्रतीक है। उस की उपेक्षा करेंगे तो नहीं चलेगा। पश्चिम से मुसलमानोंका जब आक्रमण हुआ, तब यहाँ राजतंत्र था। राजा थे। उनकी सेना भी थी। किन्तु राष्ट्रभाव नहीं था। हम सब एक हैं, यह भावना नहीं थी। अतः उत्तर में जब राजपूत, आक्रांताओं से लड़ रहे थे, तब दक्षिण शान्त था। जब मराठे उनसे लड़ते थे तो राजपूत शान्त थे या आक्रांताओं की ही सहायता करते थे। १८५७ में सारा हिन्दुस्थान अंग्रेजों के खिलाफ खड़ा हुआ तो पंजाब खड़ा नहीं हुआ। सिक्खों ने अंग्रेजों का साथ दिया। उसके केवल ९-१० साल पहले पंजाब अंग्रेजों के साथ लड़ रहा था। तो शेष भारत तटस्थ था। राष्ट्रभावना के अभाव के कारण यह सब हुआ। पराजय हुआ, गुलामी आई। कई सवाल ऐसे होते हैं जो प्रदेश विशेष के सवाल नहीं होते। वे राष्ट्र के सवाल होते हैं। अतः राष्ट्र और राज्य

का अंतर हमने समझना चाहिये। राज्य क्या है ? राज्य एक पोलिटिकल कान्सेप्ट है। एक राजकीय अवधारणा है। वह कानून के आधार पर चलती है। और कानून के पिछे सेना की या पुलिस की शक्ति होती है। हम देखते है ना कि एक बूढा आदमी जो सेशन जज है वह एक खूंखार गुण्डे को फांसी की सजा सुनाता है और वह आरोपी सजा मान लेता है। क्यों मान लेता है ? जिसने दो चार खून किये हैं उसे एक बूढे आदमी को मारने में क्या तकलीफ हो सकती है ? आसान बात है। लेकिन वह मान लेता है क्योंकि वह जानता है इस इस न्यायाधिश के शब्द के पीछे पुलिस की शक्ति खड़ी है, सेना की शक्ति खड़ी है। सँक्शन, यह सँक्शन आधार होता है, सँक्शन याने कानून। इसलिए कहते है की State is a political association. वह कानून से चलती है By Law, वह कानून की आधार पे चलती है Through Law, और एक अर्नेस्ट बर्कर नाम के अंग्रेज चिंतक हैं, Principles of Political and Social Theory उनकी प्रसिद्ध किताब हैं, वे कहते हैं, State is Law राज्य एक कानून है, और कुछ नहीं। और वह कोई गलत नहीं कहते थे। महाभारत में भीष्म शरशय्या पर पड़े थे तब भगवान श्रीकृष्ण ने राजनीति का ज्ञान पाने के लिए युधिष्ठिर को भेजा। युधिष्ठिर ने प्रश्न किया "पितामह यह तो बताइए कि राज्य कब आया? जब से आदमी पैदा हुआ तब से आया है?" तो भीष्म ने कहा नहीं पहले ऐसी बात नहीं थी। एक स्थिति थी, जब न राज्य था, ना राजा था, न दंड था न दंड देने वाली व्यवस्था थी। लोग धर्म से चलते थे। नीति से चलते थे। धर्म का मतलब नीतिमत्ता था। और परस्पर की रक्षा करते थे।

न वै राज्यं न राजासीत्, न दंडो न च दांडिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ।।

लोग धर्म से चलते थे। परस्पर की रक्षा करते थे। फिर युधिष्ठिर का स्वाभाविक रूप से दूसरा प्रश्न आया कि यह व्यवस्था क्यों टूट गई? भीष्म पितामह कहते हैं, धर्म क्षीण हो गया। जो सबल थे, बलवान थे, ताकतवर थे वह दुर्बल को यातना देने लगे। महाभारत का शब्द है ' मात्स्य न्याय संचरित' हो गया। याने बडी मछली छोटी मछली को निगलने लगी। तो लोग ब्रह्मदेव के पास गए। और कहा हमें राजा दे दो। हम उसका अनुशासन मानेंगे। पर कोई राजा बनने के लिए तैयार नहीं हुआ। बहुत मिन्नत के बाद में मनु राजा बनने के लिए तैयार हुआ। और पहला मनु आया, उसने कानून बनाया। ऐर जो अपराधी थे उनको दंड देने की व्यवस्था की। लोग मानने लगे उसको, उस व्यवस्था को। कल रघुवंश का मैंने जिकर किया था। रघुवंश में कालिदास ने रघुवंशी राजाओं का वर्णन किया है। उनकी विशेषता थी ' यथापराधदंडानाम्' जैसा अपराध वैसा दंड देते थे। दिलीप राजा को बडी तपश्चर्या के बाद रघु नामक पुत्र हो गया। तो उसने कहा कि सब कैदियों को छोड़ दो। जेल के अधिकारी ने कहा कि महाराज, कैद में कोई नहीं है। ऐसा कालिदास ने लिखा है।

न संयतस्तस्य बभूव रक्षितुविसर्जयेत यं सुतजन्महर्षितः।

याने कि पुत्र के जन्म से हर्षित होकर जिसको मुक्त करे ऐसा कोई बंधन में नहीं था। ऐसी भी व्यवस्था हो सकती है। यानी कि एक आदर्श कालिदास ने दिया और मार्क्स ने भी दिया है, कि शोषणमुक्त समाज हो जाएगा तो राज्य की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। उसने कहा The State shall wither away याने राज्य सूख जाएगा। राज्य सूख जाएगा का मतलब? यह जो

सेना है, पुलिस है सब सूख जाएँगे, उसकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। तो राज्य का मतलब शक्ति, ताकत, सँक्शन है। वह एक राजनैतिक अवधारणा है। उसकी मर्यादाएं समझनी चाहिए।

तो राष्ट्र राज्य से अलग होता है। राष्ट्र याने लोग। The people are the nation, लोगों का राष्ट्र बनता है। किन लोगों का राष्ट्र बनता है? उसकी तीन शर्ते है।

१.लोग जिस भूमि पर रहते हैं, उस भूमि के बारे में लोगों की क्या धारणा है? क्या मातृभूमि समझते है? क्या वंदे मातरम् कहने से अभिमान आता है? उनकी छाती फूलती है? तो जिन लोगों को अपनी भूमि, अपना देश, मातृभूमि लगता है, उनका राष्ट्र बनता है। यह प्रधान, प्राथमिक शर्त है।

2.किसी भूमिपर लोग हजारों साल से रहते आते हैं। उनका एक इतिहास बनता है। इतिहास की घटनाए होती है। कुछ हार की होती हैं कुछ जीत की होती है। कोई हर्ष की होती है, कोई अहर्ष की होती है। जिनके मनमें इस इतिहास की घटनाओं को सुनकर, देखकर, पढ़कर, समान प्रकार की भावनाएँ उदित होती हैं, उन लोगों का राष्ट्र होता है। इसको ही बोलते हैं कि जिन लोगों का इतिहास समान जोता है, इतिहास एक ही होता है। लेकिन किसी के हारने से हमको... जैसे राणाप्रताप की, दुःख होता है। हमारा क्या गया था? और राज्याभिषेक होता है तो आनंद मिलता है। क्यों? आपको क्या मिला? ऐसा जिनका इतिहास के साथ लगाव होता है उनका राष्ट्र होता है।

और तीसरी और सबसे महत्व की बात है, और गुरुजी ने उसका बारबार आग्रह किया, कि जिनके अच्छे और बुरे नापने के मापदंड समान होते हैं उन लोगों का राष्ट्र बनता है। इस मापदंड को ही जीवनमूल्य बोलते हैं। जीवनमूल्यों का मतलब ही संस्कृती होती है। What is culture after all? Culture is a value system संस्कृति याने एक मूल्यों की व्यवस्था है। यह अच्छा यह बुरा, यह अनपढ़ आदमी भी समझता है। किसी के घर में लड़का पैदा हो गया तो उसका नाम रावण नहीं रखते। क्यों रावण नाम नहीं रखते? उसने हमारा क्या बिगाड़ा था? वह तो ब्राह्मण था, शिवभक्त था। राम के नाम मिलेंगे लेकिन रावण का नाम नहीं मिलेगा। मैं उत्तर प्रदेश में बहुत घूमा, मैंने अनेक यादव देखे, अमुक सिंग यादव, तमुक सिंग यादव। फिर भी कंस सिंग यादव कोई नहीं मिला। कंस भी यादव ही था। अनपढ़ से अनपढ़ आदमी भी समझता है क्या अच्छा है क्या बुरा है। इसीका नाम संस्कृति है और कुछ नहीं। जिनकी संस्कृति समान है, जिनके मूल्य समान है, जिनके अच्छे और बुरे नापने के मापदंड समान है उनका राष्ट्र होता है। इन मूल्यों को अपने जीवन में जिन्हों ने लाया वे हमारे आदर्श बन जाते हैं। कल राज्याभिषेक होने वाला है, किन्तु सौतेली माँ बुलाती है, कहती है कि राज्याभिषेक नहीं होगा, चौदह साल वनवास में चला जा। स्वयं दशरथ कहते हैं कि मुझे जेल में डालो और तुम राजा बन जाओ। राम नहीं मानते। उस समय यदि रेफरन्डम लेते, जनमत संग्रह लेते तो दो मत छोड़कर सारे मत राम के पक्ष में आते, कैकेयी और मंथरा को छोड़कर। लोगों की इतनी इच्छा होने पर भी वह वनवास में जाते है। वे राम हमारे आदर्श बने।

भरत को अनायास ही राज्य मिल गया, फिर भी राम से विवाद करता है इसलिए नहीं कि मैं राजा बनूँ। इसलिए कि तुम राजा बनो। राम नहीं मानते तो उनके जूते अपने सर पर रखकर भरत सिंहासन पर रखता है। और कहता है कि चौदह साल तक राह देखूँगा। अगर नहीं आये तो अपने को अग्नि में भस्म कर दूँगा। भरत हमारा आदर्श है। एक राजा का पुत्र बहुत सुख में रहता है, और बाहर निकलता है। क्या देखता है? वह वृद्ध देखता है, एक रूग्ण देखता है, एक प्रेत देखता है। सोचता है इतने दुःख है दुनिया में? मन में निश्चय करता है कि मैं दुःख मिटा दूँगा। राजमहल छोड़ देता है वह गौतम भगवान बुद्ध बनता है। वह हमारा आदर्श बनता है। वह तो बूढा नहीं था, उसको कोई पीड़ा नहीं थी, उसको कोई रोग नहीं था। दूसरों के दुःख से व्यथित होकर अपना सुख छोड़ देता है वह हमारा आदर्श होता है।

एक पन्ना नाम की दाई। दासी, नौकरानी, उसको राजपुत्र की रक्षा सौंपी जाती है। हत्यारा आता है, पूछता है कहाँ है राजकुमार? वह अपने पूत्र की ओर इशारा करती है। अपने सामने अपने पुत्र की हत्या देखती है। वह पन्ना हमारी आदर्श है। ऐसे अनेक आदर्श, केवल बलिदान के ही नहीं, त्याग के भी, पराक्रम के भी। यह जो मूल्य हैं, जीवन मूल्य हैं यही संस्कृति है और इसी से राष्ट्र बनता है। राष्ट्र प्रधान रहेगा, राष्ट्र प्राणरूप रहेगा तो सबकुछ ठीक होगा। तभी राजनीति ठीक रहेगी, शिक्षा ठीक रहेगी।

नयी परिस्थितियों में यह सब बताना आवश्यक था। श्री गुरुजीने वह बताया। जिला प्रचारकों से आरंभ किया। १९५४ में सिंदी में सब जिला प्रचारकों को बुलाया। संघदर्शन, हिन्दुत्व का जीवनदर्शन, राज्य क्या होता है, राष्ट्र क्या होता है, जीवन के अनेक अंग क्या होते हैं, उनका परस्पर से संबंध क्या होता है, यह सब बताया गुरुजी नें। फिर छह साल बाद इन्दौर में एक सम्मेलन हुआ। उससे भी बड़ा। और लोगों को भी बुलाया जो प्रचारक नहीं थे उनको भी बुलाया। फिर चार दिन तक वही बात की कि संघ राष्ट्र का प्रतीक है वह मजबूत होना चाहिए। और राष्ट्र यानी लोग। लोगों का राष्ट्र। लोगों को लगना चाहिए कि हम सब एक हैं। गुरुजी ने स्वयं वह बोला नहीं है लेकिन मैं बताता हीँ, अर्नेस्ट रेनाँ नाम के फ्रेन्च ग्रंथकार हैं। उनकी छोटी सी किताब है। What is a Nation वह कहते है कि Nation is a spiritual principle यह कोई भौतिक नहीं है, Nothing that is material suffices here वे कहते हैं, जो भौतिक है उससे कोई राष्ट्र नहीं बनता। एक भूभाग से भी राष्ट्र नहीं बनता। एक भाषा के कारण भी राष्ट्र नहीं बनता। कहते हैं कि Nation is a spiritual principle और Two Things which are really one go to make this spiritual principle दो बातें है जो मिलकर एक सिद्धांत बनाती है। One of the things lies in the past, other in the present एक अतीत में है, एक वर्तमान में है और उसकी दिशा भविष्य की ओर होती है। भगिनी निवेदिता ने भी कहा हिन्दुस्तान को समझना है तो एक बात को ध्यान में रखो “By the past, through the present, to the future.” By the past does not mean towards the past यानी अतीत का ध्यान रखना चाहिए, वर्तमान का भान रखना चाहिए और हमारी निगाह भविष्य की ओर होनी चाहिए। यह राष्ट्रभाव कहाँ रहता है? यह भावना में रहता है। आध्यात्मिकता में रहता है। यह कानून में नहीं रहता। इसलिए राष्ट्रभाव जगाने की आवश्यकता है। हम १५ अगस्त को स्वतंत्र हो गये। १४ अगस्त को हम परतंत्र क्यों थे? अंग्रेजों का राज केयों आया? अंग्रेजों का हिन्दुस्तान में

राज्य होना और डेढ सौ साल चलना – एक महान आश्चर्य था। अंग्रेज सेना लेकर नहीं आए थे। महंमद बीन कासिम सेना लेकर आया था, गोरी सेना लेकर आया था। अंग्रेज सेना लेकर नहीं आए थे। अंग्रेज का राज किसने चलाया? हमने चलाया। आप अमृतसर जाएंगे तो जालियाँवाला बाग में गाइड बताएगा कि अंग्रेजोंने जो गोली चलाई उसके निशान इस दीवार पर हैं। मेरे मन में सवाल आया गोलियाँ अंग्रेजों ने चलाई थी क्या? दो हजार लोग मारे गये थे उस दिन। जो जानवर जैसे हाथ और पाँव पर रेंगते गए वे ही जीवित रह पाये थे। गोली हमने मारी, ऑर्डर देने वाला अंग्रेज था। लेकिन मारने वाले हम थे मरने वाले भी हम थे। कौन चलाते थे अंग्रेज का राज? क्योंकि हम समझते ही नहीं थे कि हमारा राष्ट्र क्या है? हमारा दायित्व क्या है? हमको लगना चाहिए कि हम सब एक हैं। और वह नहीं लगेगा और सत्ता सत्ता करते रहेंगे, राजनीति करते रहेंगे तो बात नहीं बनेगी। डॉक्टर साहब तो राजनीति में थे क्यों छोड़कर आए? वहाँ रहते तो काँग्रेस के प्रेसिडेन्ट भी बन जाते। १९५० के आसपास बड़े बड़े प्रचारक भी कहने लगे थे कि डॉक्टर हेडगेवार हमें भी समझे है। हमने भी हेडगेवार के साथ काम किया है। किन्तु वे नहीं समझे डॉ. हेडगेवार को। और इसलिए संघ से दूर हो गये, अलग हो गये, निष्क्रिय हो गये। गुरुजी ने उनकी परवाह नहीं की। और १९७२ में सात दिन तक, पूरे सात दिन तक, ठाणे के सम्मेलन में फिर से वहाँ सारा जीवनदर्शन, हिन्दुत्व का सारा जीवनदर्शन, जो राष्ट्र का जीवनदर्शन है, विस्तारपूर्वक बताया। हिन्दू की परिभाषा क्या है, यह सब बताया। लोकमान्य तिलक ने हिन्दू की परिभाषा की। '**प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु, उपास्यानाम् अनियमः**' वेदों का प्रामाण्य जो मानते हैं, उपास्य उनका कुछ भी हो, वह हिन्दू है। अब जैन और बुद्ध प्रामाण्य नहीं मानते वेदों का। वे हिन्दू है या नहीं? सावरकरजी ने उस व्याख्या को और व्यापक किया।

आसिन्धुसिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः।।

सिन्धु से लेकर सिन्धु तक, याने सिन्धु नदी से लेकर समुद्र तक फैले हुए भारत को जो पितृभूमि मानता है, पुण्यभूमि मानता है वह हिन्दू है। इस परिभाषा के कारण पारसी, मुसलमान, ईसाई अलग हो जाते थे। तब गुरुजी ने उसके और आगे जा कर बताया कि जो भारत को माता मानता है, उसकी संस्कृति को मानता है, पुरखों को मानता है वह हिन्दू है। भले ही वह हज जाता हो या मस्जिद जाता हो। हिन्दुत्व को उन्होंने और व्यापक बनाया।

समाज में जो अनेक कार्य चलते है वे आवश्यक हैं लेकिन आनुषंगिक हैं। राजनीति भी चाहिए। वह आवश्यक है। डॉ. हेडगेवार ने कहा था कि कोई भी नृप हो हमें क्या हामि – ऐसी मानसिकता नहीं चलेगी। महाभारत में कहा है,

अराजकेषु राष्ट्रेषु धर्मो न व्यवतिष्ठते।

जहाँ राजा नहीं है, अच्छा राजा नहीं है, जहाँ धांधली है, गड़बड़ है वहाँ धर्म नहीं रहता है। अतः राजनीति आवश्यक है। यानी राजनीति भी चाहिए, राजनीति ही नहीं चाहिए। यह 'ही' और 'भी' का झगड़ा है। और संघ 'भी' का पक्षधर है। राजनीति भी, धर्मनीति भी। जीवन के कितने क्षेत्र है? किसानों का क्षेत्र है, मजदूरों का क्षेत्र है, धर्म का है, महिलाओं का है, उन सब क्षेत्रों में संघ का जो विचार है वह पहुँचना चाहिए। संघ का विचार यानी राष्ट्र का विचार।

हमने सभी क्षेत्रों में जाना चाहिए। किन्तु अपने विचार के साथ, तथा अपने चारित्र्य के साथ। यह गुरुजी ने सिंदी में कहा, यही इन्दौर में कहा और यही ठाने में कहा। वहाँ काफी चर्चा हो गई। प्रश्न पूछने के लिये किसीको मनाई नहीं थी। गुरुजी जवाब देते थे।

सन १९५४ में सिंदी में सम्पन्न कार्यकर्ताओं की प्रदीर्घ ऐतिहासिक बैठक में दिनांक १४ मार्च रात्रि के भाषण में गुरुजी कहते हैं – "पिछले कुछ वर्षों से संघ कार्य के साथ-साथ और भी कुछ बातें चल रही हैं। उदाहरणार्थ कुछ वर्ष पूर्व अपने प्रयत्नों से वृत्तपत्र, पाठशालायें, दवाखाने आदि आरंभ हुए हैं। सिद्धांत के रूप में यह मैं अवश्य कहूँगा कि संघ कार्य स्वतंत्र एवं सर्वांगपूर्ण है, उसकी पूर्ति के लिए इन बातों की आवश्यकता नहीं। ये सब काम हमें नित्य चलने वाले संघ कार्य के साथ ही करने चाहिए। ये तो संघ कार्य के सम्पूरक 'एडिशन' है, पर्याय ' सब्स्टीटयूशन' नहीं। हमारा हिन्दू राष्ट्र है। इसका संवर्धन और संरक्षण ही हमारे कार्य की दृष्टी नहीं, अपितु असका विकास और विस्तार भी हमारा लक्ष्य हैं।" इसी भाषण में उन्होंने आगे कहा, "लोग यह भी पूछते हैं, इन कार्यों का संघ से संबंध क्या होगा? स्पष्ट है उन्हें (स्वयंसेवकों को) विभिन्न क्षेत्रों को पादाक्रान्त करने के लिए भी भेजा है। विदेश में रहने वाला हमारा राजदूत जिस नीति को अपने कार्य और व्यवहार का आधार बनाता है यही ध्येय उसका होना चाहिए। यह एम्बेसेडर, राजदूत है वह राष्ट्र का प्रतिनिधि बनके जाता है। इसलिये अपने व्यवहार के बारे में सतर्क रहता है। कहीं उसके व्यवहार के कारण उसके राष्ट्र के संबंध में कोई अनुचित धारणा न बन जाए, यह राजदूत का कार्य है। कई बार लोग पूछते है कि क्या संघ सभी क्षेत्रों पर अंकुश रखना चाहता है? मैं पूछता हूँ कुछ लोगों को अपने कंधों पर चढ़ाकर जय जय कार करने और चरण चूमने के लिए इतना परिश्रम किया गया है क्या? भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भेजे गये कार्यकर्ता एक एक क्षेत्र को जीतने के लिए भेजे गये सेनापति के समान है। जिन्हें संघ के दैनंदिन कार्य से जीवन्त सम्बन्ध रखकर अपने त्याग, तपस्या, श्रम तथा कौशल्य से हर क्षेत्र में नया आदर्श उपस्थित करते हुए संघ के महान लक्ष्य की पूर्ति करनी है।"

३ श्री गुरुजी व्याख्यान माला - दिनांक १९-२-२००४

स्थान - टैगोर हॉल, कर्णावती
वक्ता - मा. गो.वैद्य

कल के भाषण में मैने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि संघ समाज का प्रतीक है। और राष्ट्र यानी समाज होता है। राज्य एक व्यवस्था का नाम है, तो राष्ट्र यह लोगों का नाम है। उसकी तीन शर्ते भी बताई थी कि जो अपने देश को मातृभूमि मानता है, जो अपने पुरखों को मानता है, इतिहास को मानता है और जिनके जीवनमूल्य यानी संस्कृती समान होती है उन लोगों का राष्ट्र होता है। और ऐसे लोगों का नाम इतिहास की प्रक्रिया में हिन्दू हो गया है। अतः यह हिन्दू राष्ट्र है। बहुत लोग कहते है कि हिन्दू नाम वेदों में नहीं है, उपनिषदों में नहीं है। रामायण और महाभारत में भी नहीं है। इस नाम का आग्रह क्यों करते है? पहली बात तो यह है कि 'हिन्दू' इस नाम से हमारी पहचान हो गई है। रामायण में, महाभारत में, वेदों में 'हिन्दू' नहीं है, लेकिन 'सिन्धु' है। और कई भाषाओं में कई बोलियों में 'स' का उच्चार 'ह' होता है। तो जो 'स' नहीं कह सकते या नहीं कहते वह 'हिन्दू' कहते हैं। आप असम में जाएंगे और वहाँ आप उनके प्रांत का नाम पूछेंगे, तो वह असम नहीं कहेंगे, आहोम कहेंगे।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, असम में 'राष्ट्रीय स्वयंहेवक हंघ' बन जाता है। मैं असम के वर्ग में गया था। संघ शिक्षा वर्ग में, तब मेरा परिचय कर दिया गया था कि नागपुर के तरूण भारत के भूतपूर्व 'हंपादक' है। जैसा पूर्व में होता हैं ऐसा पश्चिम में भी होता है। हम भी कहते हैं। कभी सप्ताह की जगह हप्ता कह लेते हैं। पारसिओं का जो धर्मग्रंथ है झेंद अवेस्ता उसमें सुर के लिए अहुर शब्द है। मुझे बताया गया कि गुजरात के कुछ भागों में सोपारी को होपारी बोलते है। तो वेदों में सिन्धु है, का मतलब हिन्दू है। कोई कहते हैं कि नहीं आपको विदेशियों ने आपका यह नाम दिया हुआ है। उसका अभिमान क्यों होना चाहिए मैं कहता हूँ कि अपना नाम भी हमने कहाँ रखा होता है दूसरों ने ही रखा होता है। मेरा नाम माधव है वह मैंने नहीं रखा। मुझे रखने का 'चॉईस' होता तो शायद 'माधव' नहीं, दिलीपकुमार, मनोजकुमार ऐसा कुछ नाम रख लेता। और आप इसकी जाहिरात करते कि आज दिलीपकुमार का भाषण है। तो शायद यह हॉल कम पड़ता। लेकिन मेरा नाम मैंने नहीं रखा लेकिन इस नाम के साथ मेरी आइडेन्टिटी बन गई है, मेरी अस्मिता, मेरी पहचान बन गई है। वह इस नाम के साथ एकरूप हो गई है। उसी प्रकार 'हिन्दू' इस नाम से इस देश के वासिओं की जो पहचान है वह एकरुप है।

इसलिये हमने यह कहा कि यह जो राष्ट्र है, वह हिन्दू राष्ट्र है। इसका संबंध हम चोटी रखते हैं कि नहीं, चंदन लगाते हैं कि नहीं लगाते हैं, मंदिर में जाते हैं कि नहीं जाते, जाते हैं तो किस मंदिर में जाते हैं इसके साथ नहीं हैं। हिन्दू समाज का यह जो हिन्दू राष्ट्र है इसका प्रतीक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। अब राष्ट्र, समाज का बनता है, लोगों का बनता है तो समाजजीवन

के अनेक अंग होते है। कल संक्षेप में यह बताया था। कुछ लोग केवल राजनीति या अर्थनीति को ही अंग मानते हैं। वह ठीक नहीं है। कम्युनिस्ट राष्ट्र को नहीं मानते। मुसलमान भी कहते हैं कि ऊम्मा एक है। लेकिन दिखता है कि सारे इस्लाम को माननेवाले एक नहीं है। एक होते तो फिर ईरान और ईराक में लडाई नहीं होती। ईराक, कुवैत पर हमला नहीं करता। बांग्लादेश को दबाने के लिए पाकिस्तान अत्याचार नहीं करता। जैसा मैंने कल कहा राष्ट्र, भावना में होता है और राज्य, व्यवस्था में होता है। तो भावना अलग है। उसके पीछे इतिहास होता है, बहुत सारी अलग चीजें होती हैं। समाज जीवन के अनेक अंग होते है। राजनीति भी एक अंग है। लेकिन एक अंग है। अर्थकारण भी है। धर्म एक समाज का क्षेत्र है उसके साथ उपासना है, नीतिमत्ता है। शिक्षा का क्षेत्र है, विद्यार्थी हैं, महिलायें हैं, वनवासी बंधु हैं, किसान हैं, मजदूर हैं, व्यापारी हैं, उद्योगपति हैं। कितने हैं। सारे राष्ट्रजीवन के अंग हैं। परम पूज्य गुरुजी ने बताया कि ये राष्ट्र के याने संघ के ' सब्स्टीटयूट' नहीं हैं। अनुपूरक हो सकते हैं। राष्ट्र को सुदृढ करने का, राष्ट्र को बलवान करने का, राष्ट्र को संगठित करने का मतलब यह है, इन सब अंगों को सुदृढ करना, इन सब अंगों को समर्थ बनाना और उसका संगठन करना। उसका आधार क्या है? तो बताया गया कि ये सारे अंग राष्ट्रभाव से युक्त और चारित्र्यसंपन्न हो। इस हेतु हमने इन सब क्षेत्रों में लोग भेजें हैं। गुरुजी के भाषण जो सिंदी के वर्ग में हुआ था उसका उद्धरण मैंने कल पढ़कर सुनाया। कोई एक राजदूत जाता है तो क्या लेकर जाता है? अपने देश का हित लेकर जाता हैं। वह देखता है कि उस क्षेत्र में अपने देश का जो हित है उसका संरक्षण होता है या नहीं होता। यह राजदूत का काम है। ठाणे के भाषण में उन्होंने कहा था कि सारे समाजजीवन के जितने भी क्षेत्र हैं उनको जितने के लिए, पादाक्रान्त करने के लिए, हमारे सेनापति के रूप में लोग गये हैं। तो पादाक्रान्त काहे के लिए करना है? अपने स्वयं के लिए? नहीं। तो जिस आधार पर हमने यह संगठन बनाया है, नाम ही उसका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है, संघ के नाम में दो शब्द हैं। राष्ट्रीय और संघ। केवल एकत्रीकरण को संघ नहीं बोलते। भीड़ तो थियेटर में भी एकत्र होती है, बाजार में भी आते हैं लोग। वह संघ नहीं। तो संघ का शब्दार्थ हैं संस्कारयुक्त एकत्रीकरण। और संस्कार काहे के? संक्षेप में कल बताया था कि हम छोटे हैं समाज बड़ा है इसका संस्कार। समाज के बिना हम नहीं हैं, समाज के बिना हम नहीं रह सकते। बहुत लोगों को समाज का ऋण समझ में नहीं आता। कहते हैं कि समाज ने हमको क्या दिया? पूछते हैं, हम समाज के लिए काम क्यों करें? हम अपना ही क्यों न देखें? तो मैं बहुत बार सोक्रेटिस की एक कथा बताता हूँ। आप लोगों को बताही देता हूँ। आप लोग जानते हैं सोक्रेटिस का नाम। वह एथेन्स में रहता था। ग्रीस में। और एथेन्स के शहर का जो देवता है ' गोडेस ओफ डेल्फी' उन्होंने यह निर्णय दे दिया था कि 'सोक्रेटिस इज ध वाइजेस्ट मॅन इन एथेन्स'। सबसे बुद्धिमान व्यक्ति एथेन्स में सोक्रेटिस है। सोक्रेटिस को भी बड़ा आश्चर्य लगा। जिनकी बुद्धिजीवी करके, विद्वान करके ख्याति है, वे तो दूसरे ही हैं। तो मुझे क्यों श्रेष्ठ कहा? तो वह इन सब लोगों को मिलने के लिए गया। सोक्रेटिस बुढा था लेकिन उसके साथ तरूणों की टोली हमेशा रहती थी। और एक एक विद्वान के पास में जिनकी बड़ी कीर्ति थी, ख्याति थी उनके पास वे गए। उनके साथ चर्चा हुई। चर्चा के बाद सोक्रेटिस इस निष्कर्ष पर आया कि यह लोग बहुत जानते हैं लेकिन जितना जानते हैं उससे ज्यादा हम जानते हैं ऐसा वे मानते हैं। They know much, but they think that they know more than what they

actually know and probably I am the wisest man because I know that I know nothing.

मुझे कुछ मालूम नहीं है, मैं अज्ञानी हूँ इस प्रकार का मुझे ज्ञान है इसलिये शायद देवताओं ने कहा होगा कि मैं सबसे ज्ञानवान हूँ। तो इसके कारण उसने काफी अपने दुश्मन बना लिए। और दुश्मन बनने के कारण उन्होंने तय किया कि इसको हम सबक सिखायेंगे। तो सोक्रेटिस पर उन्होंने दो आरोप लगाए, एक तो यह कि वह तरूणों को बिगाड़ता है। और दूसरा आरोप लगाया कि, एथेन्स के जो मान्यताप्राप्त देवता हैं उनके खिलाफ बोलता है। एथेन्स में उस वक्त जनतंत्र था। पाँच सौ लोगों की एसेम्ब्ली थी। और व्यवस्था यह थी कि एसेम्ब्ली के सारे सभ्य हैं वह सारे न्यायाधीश बनते। सोक्रेटिस पर मुकदमा चला, आरोप लगाए। जिन्होंने आरोप लगाए उन्होंने अपना पक्ष रखा सोक्रेटिस ने उसका उत्तर दिया। बाद में वोटिंग हो गया कि सोक्रेटिस दोषी है या नहीं हैं। तो बहुमत से सोक्रेटिस दोषी ठहराया गया। सोक्रेटिस के पक्ष में २२० मत पड़े और विपक्ष में २८०। उस समय एथेन्स शहर की न्याय पद्धति में जो आरोप लगाते थे वही सजा भी बताते थे। आरोपपत्र में ही सजा दी थी मृत्युदंड, सजा-ए मौत। मृत्युदंड की सजा, विष पी कर सोक्रेटिस को मरना चाहिए। लेकिन एक सुविधा थी उसमें कि जिसको सजा हुई है उसको एक 'ऑल्टरनेट पनिशमेन्ट' एक पर्यायी सजा बताने का मौका दिया जाता था। तो जब २८० मत सोक्रेटिस के विपक्ष में गए उन्होंने कहा कि आप को तो मौत की सजा है। आप को कोई दुसरी सजा सुझानी है तो आप सुझाव दे सकते हैं। तो सोक्रेटिस को गुस्सा आ गया। और उसने कहा कि इस सभागृह में, उन लोगों के चित्र लगाएं हैं जिन्होंने एथेन्स की सेवा की है। मैने मेरी सत्तर (७०) वर्ष के आयु में एथेन्स शहर के कल्याण के बिना दूसरी कोई विचार मेरे मन में नहीं आने दिया। तो मेरी इच्छा यह है, मेरी पर्यायी सजा यह है, कि मेरा चित्र यहाँ पर लगाया जाय, मैं विष पीकर मरने के लिए तैयार हूँ। बड़ी गड़बड़ हो गई कि यह कौन सी सजा होती है, सोक्रेटिस ने कहा कि मुझे आपने पर्याय पूछा हैं, मैने 'ऑल्टरनेटिव' दे दिया है उस पर वोटिंग हो जाय। वोटिंग हो गया। और सोक्रेटिस के पक्ष में जो २२० मत थे वे और कम हो गये, १८० हो गये। और ३२० विरूद्ध १८० मतों से सोक्रेटिस का मृत्युदंड पक्का हो गया। अब कुछ दिन के बाद में उसको जहर पीकर मरना है। बहुत लोगों को बुरा लगा। इतना विद्वान आदमी, इतना निरपेक्ष आदमी, इतना देशभक्त आदमी उसको केवल मूर्ख लोगों की बहुसंख्या के कारण, मृत्यु का दंड झेलना पड़ रहा है। बहुत लोगों को बेचैनी थी। दूसरे दिन उसको जहर पीना है। तो रात को दो बजे उसका एक शिष्य क्राईटो नाम का, वह सोक्रेटिस की कोठरी में चला गया। सोक्रेटिस निश्चिंतता से सोया हुआ था। यानी जिसको मरना था सुबह आठ बजे, वह स्वस्थ सोया हुआ था। और जिनको मरना नहीं था, रहना था वे सब तिलमिला रहे थे। ऐसा भाग्य अपने भी नसीब में आना चाहिए कि लोग अपने लिए तिलमिलाये और हम शांति से मृत्यु की प्रतिक्षा करें। उसने सोक्रेटिस को जगाया। सोक्रेटिस बोले क्या बात है? उसने कहा बात पूछने का समय नहीं हैं। मैंने पहारेदार को रिश्वत दे कर ये पहारेदार की वर्दी लाई है। उसकी आठ बजे तक 'डयुटी' है। हमें छह घंटों में एथेन्स शहर से दूर जाना है। तो सोक्रेटिस कहते हैं तुम क्या कहते हो? अपने देश का जो कानून है, समाज का जो कानून है उसको तोड़कर, उसका

अपमान कर चला जाऊँ? तो क्राईटो कहता है कि यह क्या कानून है? यह कौनसा न्याय है जो निरपराध व्यक्ति को मौत की सजा देता है?

तो सोक्रेटिस कहता है कि मेरे मन में कुछ प्रश्न खड़े हो गये हैं। उनके जवाब तुम दो, फिर मैं तुम्हारे साथ चलूंगा। दो प्रश्न जो सोक्रेटिस ने पूछे उनका मैं जिक्र यहाँ करता हूँ। सोक्रेटिस ने कहा मान लीजिए कि अपना यह जो कानून है, देश का समाज का नियम है, वह शरीररूप धारण करके मेरे पास आया, और उसने मुझे पूछा कि सोक्रेटिस तुम जिस मकान में रहते थे वह मकान तुमने बनाया हुआ नहीं है, तुम्हारे बाप ने बनाया हुआ था। और इस देश के कानून से ही तुम को मिला। और तुम्हारी मृत्यु के पश्चात तुम्हारे पुत्र को मिलनेवाला है। मुफ्त में तुमको मकान मिला तब तुमको कानून अच्छा लगा! और आज वह कानून कहता है कि तुमको मरना चाहिए तो कानून को तोड़ मरोड़ कर, कानून का अपमान कर तुम भाग जाते हो? तो क्राईटो, बताओ कि मैं उसका जवाब क्या दूँ? क्राईटो के पास में कोई जवाब नहीं था। सोक्रेटिस आगे पूछते हैं कि तुम जानते हो कि मेरा विवाह हो गया है, मेरे बच्चे हो गयें हैं, यह सब समाज के कानून से, समाज के नियम से विवाह को वैधता है, मेरे बच्चों की वैधता है, उनकी प्रतिष्ठा है, वह एथेन्स शहर के नागरिक हैं। कानून कहेगा, मुफ्त में कुछ भी न करते हुये भी कानून के कारण तुम्हारे विवाह को वैधता मिल गई, तुम को नागरिकता मिल गई, नागरिक के अधिकार मिल गए, तब तुमको कानून अच्छा लगा? और अब कानून कहता है कि तुम्हें मरना चाहिए तो तुम चालाकी से भाग जाना चाहते हो? मुझे तोड़ मरोड़ कर, अपमानित करके भाग जाते हो तो मैं उसको क्या उत्तर दूँ? और क्राईटो कोई उत्तर नहीं दे सका। चला गया वह। और दूसरे दिन जिस तरह हम चाय पीते हैं उस तरह सोक्रेटिस ने विष पिया और मर गया। सोक्रेटिस क्या मर गया ! सोक्रेटिस तो अमर हो गया। सोक्रेटिस पर जिन्होंने आरोप लगाये थे उनके नाम तक आज किसी को मालूम नहीं है। सोक्रेटिस का नाम सबको मालूम है। तो यह समाज का जो ऋण है उसको समझते ही नहीं हैं हम लोग। तो मतलब यह हुआ कि समाज को सुदृढ बनाना इस का अर्थ है जितने भी समाजजीवन के विविध क्षेत्र है उन क्षेत्रों को मजबूत बनाना। हम उसके लिए हैं ऐसा ही समझना। मजबूत बनाना याने संस्कार इस प्रकार के हो कि हम समाज के लिए हैं अपने लिए नहीं है। पहले दिन मैंने कहा था कि हम समाज के लिए हैं अपने लिए नहीं हैं। पहले दिन मैंने कहा था **' भुंजते ते त्वघं पापा ये पंचत्यात्मकारणात्'** कि जो केवल अपने लिए खाना पकाते हैं, वह खाना भक्षण नहीं करते, वे पाप भक्षण करते हैं। तो हमने अपने को समाज के साथ जोड़ना चाहिए। कुछ लोग कहते है कि समाज क्या होता है? हम को मिलकर ही तो समाज होता है? हाँ, हम को मिलकर ही तो समाज होता है। लेकिन संघ यह संस्कार देना चाहता है कि हम समाज के लिए हैं समाज हमारे लिए नहीं है। आद्य शंकराचार्य का एक बडा सुंदर स्तोत्र है। षट्पदी उसका नाम हैं। उसमें भक्त कहता है भगवान को कि, हे भगवान तुम्हारा साक्षात्कार हो गया। भगवान और भक्त एकरूप हो गये हैं। द्वैत समाप्त हो गया है, अद्वैत हो गया है। भक्त और भगवान में कोई अंतर नहीं रहा। फिर भी हे भगवान मैं तुम्हारे लिए हूँ तुम मेरे लिए नहीं हो। और उदाहरण देते हैं, कि लहर समुद्र की होती है, समुद्र लहर का नहीं होता। श्लोक बड़ा सुन्दर है।

'यद्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्व च न समुद्रो न तरंगः।।'

हे नाथ, भेद का अपगम हो गया, भेद समाप्त हो गया है फिर भी 'तवाहम्' मैं तुम्हारे लिए हूँ। 'न मामकीनस्त्वम्' तुम मेरे लिए नहीं हो। 'सामुद्रो ही तरंगः' यानी लहरे समुद्र की होती है। क्व च न समुद्रो न तरंगः कभी समुद्र लहरों का नहीं होता। तो इन संस्कारों को लेकर वे भिन्न भिन्न क्षेत्र में जाएँ, एक राजदूत के नाते जाएँ, सेनापति के नाते जाएँ, उस क्षेत्र को अपने जैसा बनाएँ, यह संघ की अपेक्षा है। यह गुरुजी ने ठाणे के और सिंदी के दोनों अभिभाषणों में और उपदेश में कहा है। होता क्या है? हम अपना रंग देने के बजाय जहाँ जाते है उसी का रंग हम पर आ जाता है। अंग्रेजी में एक कविता थी, पुरानी, अभी याद नहीं मुझे। उसका अर्थ है कि नमक की गुड़िया थी। वह समुद्र कितना गहरा है यह देखने के लिए गई। वापस आई ही नहीं। समुद्र में मिल गई। हमको गुड़ियाँ जैसे नहीं बनना है। समाज के संगठन का मतलब यह है कि सारे जो क्षेत्र हैं वह सारे संस्कारों से – इस प्रकार के संस्कारों से कि हम जो भी काम कर रहें हैं वह समाज के हित का काम है ऐसे संस्कारों से उन्हें युक्त करें। महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर हो गये हैं। उनकी एक बड़ी अच्छी ओवी है। ओवी यानी एक छंद है। संघ के लिए, हमारे लिए हमारा समाज ईश्वर है।

तेया सर्वात्मका ईश्वरा, स्वकर्मकुसुमांचि वीरा।
पूजा केली होय अपारा। तोषालागी।

तो वह समाज है, वह सर्वात्मक पुरुष है। हमारे जिम्मे उसका जो भी काम आया है उसको हम पूजा का फूल समझें। और उस पूजा से यानी स्वकर्मकुसुम से, उसकी पूजा करते हैं तो उसको अपार आनंद होता है। हम सबका एक काम तो नहीं होगा। कोई शिक्षक होगा, कोई व्यापारी होगा, कोई डॉक्टर होगा, वकील होगा, कोई चपरासी होगा, कोई झाड़ू लगानेवाला होगा। लेकिन मैं जो भी काम करता हूँ यह मेरे समाजरूपी परमेश्वर की सेवा का एक फूल है, ऐसा समझ कर काम करना चाहिये। और परमेश्वर को मुरझाया हुआ फूल, गंदा फूल कभी अर्पण किया नहीं जाता। तो मेरा कर्म भी उस फूल के समान हो। जो भगवान के फूल हैं उसके समान बनना चाहिए। इस भूमिका को लेकर संघ के स्वयंसेवक सब गये। लेकिन ध्यान में रखना चाहिए कि सारे जो अंग है उन अंगों का समाज शरीर है। शरीर तब तक काम करता है जब तक उसमें आत्मतत्व विद्यमान होता है। संघ इस समाज शरीर की आत्मा है। जीव चला गया तो उस शरीर का कोई उपयोग नहीं। अच्छी बड़ी नर्तिका भी है तो भी प्राण चला गया तो नाच नहीं सकती। पाँव नहीं हिला सकती। शरीर का कोई उपयोग नहीं। बड़ी लावण्यवती भी है, विश्वसुंदरी भी है, प्राण चला गया तो उसके लावण्य का कोई उपयोग नहीं है। उसका कोई प्रदर्शन नहीं होता। पराक्रमी सेनापति है प्राण चला गया, हाथ वैसे ही होंगे। लेकिन उसके हाथ का, तलवार का कोई उपयोग नहीं है। बंदूक का कोई उपयोग नहीं है। शंकराचार्य का एक स्तोत्र है, उसमें वे कहते हैं,

गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन् काये।।

यानी एक बार यह प्राण चला गया, यह आत्मतत्व चला गया कि जिस शरीर पर पत्नी ने इतना प्रेम किया होता है उसको भी उसका डर लगता है। फिर वह शरीर रखने के लायक नहीं होता। दफनाना पड़ता है या जलाना पड़ता है। तो यह जो आत्मतत्व है उस आत्मतत्व के

समान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। समाजजीवन के अंदर जो आत्मतत्व रहता है वह आत्मतत्व समाज को प्रेरणा देता है। वह दिखाता नहीं। वह उसके अंदर भी रहता है, बाहर भी है। हमारे अंदर आत्मा है, बाहर भी है। और बाहर का जो आत्मा है वह परमात्मा और जीवात्मा एक है। **'जीवो ब्रह्मैव नापरः'।** उसके कारण सबको चैतन्य मिलता है और यह आत्मा की जो व्यापकता है उसको बताने वाला एक मंत्र ईशावास्य उपनिषद में है,

तदेजति तन्नैजति, तद् दूरे तद्वंतिके
तदन्तरस्य सर्वस्य, तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।

वह हलचल करता है, वह कुछ नहीं करता। वह दूर है और समीप भी है। वह उसके अंदर है, वह बाहर भी है। तो संघ को समझना जरा कठिन है। बहुत लोग संघ को नहीं समझते क्योंकि इस प्रकार का कोई दूसरा संगठन ही नहीं है। तो ऐसा एक नया संगठन है गुरुजी की प्रतिभा से उसको एक आकार मिला, एक आकृति मिली। तात्पर्य यह कि संगठन श्रेष्ठ है, वह सब से श्रेष्ठ है, बाकी सारे अंग हैं और अंगों को चैतन्य और फल देने वाला, प्राणतत्व देनावाला, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ है। गुरुजी की प्रतिभा से इस प्रकार का संघ समाज मानस में उन्होंने प्रतिष्ठित किया। २५ साल इसके लिए लगाये। १९४८ से कहिये या १९५० से कहिये १९७३ तक वह यही बताते रहे। स्वयंसेवकों को बताते रहे, सबको बताते रहे। कल कहा कि सिंदी में बताया, इंदौर में बताया, ठाणे में बताया। दुनिया को बताते रहे, जनता को बताते रहे। और आज मैंने कहा कि संघ अपने राष्ट्र जीवन के 'सेन्टर स्टेज' पर आया है। इसका श्रेय गुरुजी का है।

ऐसा कहने में किसी का अधिक्षेप नहीं कर रहा हूँ। अन्वय और व्यतिरेक दोनों व्याप्तियोंसे यह सिद्ध होता है। जहाँ जहाँ धुँवा है, वहाँ वहाँ अग्नि होती है, वह अन्वय व्याप्ति है। और जहाँ अग्नि का अभाव होता है, वहाँ धूम का भी अभाव होता है, वह व्यतिरेक व्याप्ति है। मेरा संकेत यह है कि श्री गुरुजी ने संघ का यह जो दर्शन बताया और उस पर चलने का आग्रह किया, इसके कारण आज का महान् संघ है और वे नहीं होते तो ऐसा नहीं हो सकता।

और एक दृष्टि से उनकी विशेषता का विचार करना चाहिए। हमने इतिहास में देखा है कि जो धर्म के संस्थापक होते हैं उनका प्रभाव समाज पर पड़ता है। भगवान कृष्ण का अपने समाज पर बहुत प्रभाव है। इस लिए नहीं कि वे द्वारिका के राजा थे। इस लिए प्रभाव है कि वे श्री गीता के उपदेशक थे। भगवान गौतम बुद्ध का हम इसलिए गौरव नहीं करते कि वे राजपुत्र थे। इसलिए गौरव करते है कि जगत् का दुःख मिटाने के लिए उन्होंने राजमहल का त्याग किया और सद्-धर्म का रास्ता बताया। महावीर, जिसस, पैगंबरसाहब, आधुनिक काल के गुरुनानक, रामकृष्ण परमहंस, दयानंद सरस्वती ये सारे धर्मपुरूष थे। उन्होंने अपने संप्रदाय बनाये और उनके द्वारा समाज को प्रभावित किया।

श्री गुरुजी के बारे में कहना पड़ेगा कि वे धार्मिक पुरूष नहीं थे। उनका बाह्य रूप धार्मिक पुरूष जैसा था। दाढ़ी थी। जटाएँ थी। किन्तु वे एक सामाजिक संगठन के प्रमुख थे। किन्तु एक सामाजिक संगठन के प्रमुख होते हुए भी उन्होंने धर्म के क्षेत्र को भी प्रभावित किया। यह उनकी विशेषता है। धर्म के क्षेत्र की महत्ता को वे जानते थे। हम सब यह भी जानते हैं कि जो

आनुषंगिक संगठन बने, उनमें विद्यार्थी परिषद पहले बनी। उस क्षेत्र के लिए कुछ कार्यकर्ता दिये गये। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी आये, उनके सहकारी के नाते राजनीति के क्षेत्र में कुछ कार्यकर्ता दिये। वनवासी कल्याण आश्रम की स्थापना बालासाहेब देशपाण्डे ने की। वे सरकारी अफसर थे, ट्राईबल वेल्फेर ऑफिसर थे। जसपुर में उनका एपोईन्टमेन्ट हो गया था। वहाँ उन्होंने ईसाइयों के खतरनाक खेल देखे, मन में पीड़ा आई। सरकार के माध्यम से जितना कर सकते थे उतना किया। वहाँ उन्होंने अपने १०० स्कूल खोले, सरकारी स्कूल। मिशनरिओं का प्रेशर आ गया सरकार पर तो सरकार ने उनका तबादला कर दिया। गुरुजी के पास आए। उनके बड़े भाई गुरुजी के वर्गमित्र थे। और गुरुजी से पूछा, मैं क्या करूँ? गुरुजी ने कहा तुम वकालत पास हो ना? नौकरी छोड़ दो और वकालत करो। उन्होंने ने नौकरी छोड़ दी। अब जसपुर जिला बन गया। तब तो तहसील था। तहसील में उन्होंने अपनी प्रेक्टिस शुरु की। प्रेक्टिस करते करते उन्होंने वनवासी कल्याण आश्रम बना दिया। वहाँ के राजा थे। उनका राज पद तो चला गया था लेकिन उनका महल वगेरे था। वहाँ पर जगह मिल गई। वनवासी कल्याण आश्रम बन गया। वह १९५५ में बना किन्तु अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम १९७७ में बना। आज हम कहते हैं, विश्व के ३२ देशों में या ३८ देशों में संघ की शाखाएँ है। संघ ने विश्व में संघ की शाखाएँ स्थापन करने के लिए किसी व्यक्ति को भेजा नहीं था। लोगों ने वहाँ पर संघ स्थापन किया और फिर उन सबको देखने के लिए लक्ष्मणराव भिड़े नाम के प्रचारक दे दिये।

लेकिन विश्व हिन्दू परिषद की स्थापना अलग प्रकार से हुई है। स्वयं गुरुजी ने वहाँ पर अगुवापन लिया। क्यों कि समाज में जो भी परिवर्तन लाना है, वह धर्म के माध्यम से लाना सहज है। संगठन का मतलब समाज का परिवर्तन है। हिन्दू समाज जैसा है वैसा उसे रखना यह तो डॉक्टर हेडगेवार भी नहीं चाहते थे। तो हिन्दू समाज जो है, हिन्दू समाज का जो व्यक्ति है उसमें परिवर्तन होना चाहिए। उसके अंदर में, उसके विचार में, उसके व्यवहार में अंतर आना चाहिए। उसके लिए संघ निकला है। संघ क्या है?
केवल संस्था नहीं है, संघ जीवन के तरफ देखने का एक दृष्टिकोण है। It is an attitude towards life संघ एक जीवन शैली है। हर व्यक्ति का देश के अनुकूल स्वभाव बनना चाहिए, उसका मन बनना चाहिए, उसकी प्रवृत्ति बननी चाहिए। स्वाभाविकतः देशभक्ति का व्यवहार होना चाहिए। स्वाभाविकतः डॉ. हेडगेवार के चरित्र में लिखा है, कि उस समय जो भी सार्वजनिक जीवन में काम करते थे, उनके पीछे एक उपाधि लगती थी, देशभक्त। इनको भी लगी थी देशभक्त केशवराव हेडगेवार। वह बोले यह ऐसा कैसा देश है कि जहाँ थोडे चुनंदे देशभक्त हैं और बाकी क्या देशद्रोही हैं? बाकी लोगों का देश के साथ में कोई वास्ता नहीं है? श्री गुरुजी ने देखा कि धर्माचार्यों का प्रभाव है। पुणे में जिन को 'प्रोग्रेसिव्स' कहते हैं वे उनको मिलने के लिए आये। उन्होंने कहा कि अस्पृश्यता को हटाने के लिए संघ प्रचार क्यों नहीं करता? गुरुजीने कहा हम काम कर रहे हैं। हम ऐसी भी कोशिश कर रहे है कि जो शंकराचार्य हैं, जो महात्मा हैं, उनसे भी इसके बारे में प्रयास करायेंगे। तो तूरंत उन्होंने पूछा कि इससे शंकराचार्यों का संबंध क्या है? गुरुजीने कहा आपके लिए संबंध नहीं है। मेरे लिए भी संबंध नहीं है। लेकिन हमारे समाज का बहुत बड़ा हिस्सा है जो तुम्हारी बात नहीं मानेंगे, मेरी भी

नहीं मानेंगे। वह बात शंकराचार्य की मानेंगे। अब चार शंकराचार्यों को एकत्रित लाना यह काम आसान नहीं था। और सिर्फ हिन्दू धर्म के शंकराचार्य ही नहीं, कितने पंथ? हिन्दू हम नहीं है ऐसा कहने वाले जैन, सिख, बौद्ध, इन सबके महापुरूषों को एकत्रित लाकर सांदीपनी आश्रम में जो मुंबई के पास में है, विश्व हिन्दू परिषद की स्थापना की। तब तक सभी शंकराचार्य एक व्यासपीठ पर आये ही नहीं थे। जगत्-गुरू का समाज के प्रति कुछ दायित्व है या नहीं? शंकराचार्य का नाम तो लेते थे। लेकिन वह पुराने शंकराचार्य जो केरल में निर्माण हुये और मठ कहाँ बनाया बद्रीकेदार में। कहाँ केरल कहाँ बद्रीकेदार। और आज के जैसी सुविधा तो नहीं थी। घोड़े पर घूमते थे। तो वे समाज में गए। हिन्दू समाज में, जो भी विविधताएं थी, उन विविधताओं को भेद मानते थे और आपस में झगड़ते थे। शैव और वैष्णव भी झगड़े हैं। कलह हुआ उनमें। और केवल वैचारिक कलह नहीं रहा, कहीं कहीं मारपीट भी हुई है। और कट्टरता भी आई है। इन सबको एकत्रित करके शंकराचार्य ने कहा कि यहाँ पंचायतन पूजा होगी शिव की पूजा, विष्णु की पूजा, सूर्य की पूजा, देवी की पूजा और गणपति की पूजा।

श्री गुरुजी का यह महान कार्य है कि सब धर्माचार्यों को एक मंच पर लाया। और गुरुजी ने कौन सा काम किया? गुरुजी एक स्वयंसेवक के नाते रहे। पहला जो विश्व हिन्दू परिषद का सम्मेलन प्रयाग में हुआ, उसमें गुरुजी मंच पर भी नहीं बैठे, आगे की पंक्ति में बैठते थे। मंच पर शंकराचार्य बैठते थे। और महात्मा बैठते थे। उस समय हमारे महाराष्ट्र के संत तुकड़ोजी महाराज हैं उन्होंने केवल एक वाक्य कहा कि अपने धर्म में भी कुछ बुराईयां आई हैं। हमारे धर्म में भी परिवर्तन करना चाहिए। एक शंकराचार्य मंच पर से खड़े हो गए। बोले, 'तुम कौन होते हो धर्म में परिवर्तन करनेवाले।' और गुस्से से चले गए। फिर गुरुजी उनके पास में गए, उनके चरणों पर माथा टिकाया। और कहाँ 'नहीं नहीं। धर्म में परिवर्तन करने का अधिकार तो आपका ही है। लेकिन उन्होंने (संत तुकड़ोजी) कहा कि आप शंकराचार्यजी यति है, संन्यासी है, वह जिस प्रकार का आचरण करते हैं, चार घंटे, आठ घंटे वह तो हम लोग नहीं कर सकते। तो हम जो सामान्य आदमी है, उनको धर्म का आचरण करना चाहिए, उन्होंने उपासना किस प्रकार की करनी चाहिए, कितना समय देना चाहिए, यह आपको इन लोगों को बताना चाहिए। यह आवश्यकता हैं।'

तब उनका गुस्सा शांत हो गया और श्याम के समय वे फिर मंच पर आ गए। मैं नाम नहीं बताता। अभी दो साल पहले आजके पूजनीय सरसंघचालकजी को एक शंकराचार्य मिलना चाहते थे। दिल्ली में आए थे। मैं दिल्ली में था। सरसंघचालक नहीं आ सकते थे। मुझे कहा के तुम जाकर मिलो। मैं मिला। राजनीति की बातें ज्यादा चली। फिर अंत में उन्होंने कहा कि 'तुम्हारे पास में संख्या है, मेरे पास में विचार है। आप सब लोगों को दो दिन के लिए मेरे मठ में ले आईए। मैं आपको विचार बताऊंगा।' क्या संघ के हम लोग बिना विचार के काम करते हैं। किन्तु होता है अहंकार। संन्यासी का भी होता है।

श्री गुरुजी ने इन सब को एकत्रित लाया। और उनके द्वारा १९६९ में उडुपी में जो विश्व हिन्दू परिषद का संमेलन हुआ, वहाँ हिन्दू धर्म की दृष्टि से, हिन्दू समाज की दृष्टि से एक क्रान्तिकारक उद्-घोषणा हुई। शंकराचार्यों ने कहा कि अस्पृश्यता हमारे धर्म का अंग नहीं है।

हम तो कहते ही थे। हम ने तो अस्पृश्यता को माना ही नहीं। किन्तु शंकराचार्योंने वह कहना था। और श्री गुरुजी ने उनके द्वारा वह कहलवाया कि **'हिन्दवः सोदराः सर्वे'** सारे हिन्दू भाई है। सहोदर है। और एक बात थी। मतान्तरण में वनवे ट्राफिक होता था। हिन्दू का ही मुसलमान, हिन्दू का ही ख्रिस्ती बन जाता है। जो बनाये गये हैं, स्वेच्छा से बने है, ऐसी बात नहीं है। कुछ मजबूरिओं के कारण बने हैं। उनको फिर वापिस लाने का कोई प्रावधान ही नहीं था। कोई व्यवस्था भी नहीं थी। जिन्होंने विजयनगर साम्राज्य का निर्माण किया वे हरिहर और बुक्क वे दोनों मुसलमान बन गये थे। एक शंकराचार्य ने उनको हिन्दू बनाया। लेकिन विजयनगर का जो साम्राज्य की जनता जो मुसलमान बन गई थी उनको हिन्दू बनाने का कोई प्रयास नहीं हुआ। छत्रपति शिवाजी महाराज ने थोड़ा बहुत प्रयास किया। नेताजी पालकर मुसलमान बन गये थे उन्हें फिर से हिन्दू कर लिया। ऐसे अनेक लोग हैं जो हिन्दू बनना चाहते है लेकिन आ नहीं सकते। आ नहीं सकते का मतलब हिन्दू धर्म की अनुमति नहीं है उनको। तब शंकराचार्यों ने उडुपी में कहा – **'न हिन्दूः पतितो भवेत्'** कोई हिन्दू पतित नहीं होता। कहा कि फिर से अपने मूलधर्म में आ सकते हैं। यानी परावर्तन का रास्ता खोल दिया। अस्पृश्यता के बारे में उन्होंने कहा कि अस्पृश्यता को धर्म की मान्यता नहीं। यह गुरुजी ने कहलवाया। उस संमेलन में भरनैया नामके कर्णाटक के बड़े सरकारी अधिकारी, जो आज की भाषा में दलित समाज के हैं वह उपस्थित थे। उनकी आँखों से आँसूँ बहने लगे। जब शंकराचार्य के भाषण हुए और जब गुरुजी मंच पर से नीचे उतरे तब वे प्रतीक्षा कर रहे थे। गुरुजी को उन्होंने बाहों में बाँध लिया। और गद् गद् हो कर कहा कि आपने हमारे लिए बहुत अच्छा काम किया। ऐसी हम कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे, कि हमारे जीवन में ऐसा होगा।

यह समाज में आमूलचूल परिवर्तन लाये, मुझे नहीं लगता कि गुरुजी नहीं होते तो यह हो सकता। शायद शंकराचार्य मानते ही नहीं, महंत मानते ही नहीं। हो सकता है कि गुरुजी का जो रूप था उसके कारण... वह ऋषि जैसे दिखते थे। तो उसके कारण हुआ होगा। लेकिन उनकी यह दृष्टि थी कि जो समाज से दूर होने वाले घटक हैं, जिन पर आघात होता है और किसी श्रृंखला की जो ताकत होती है उस ताकत का मापदंड क्या होता है। सबसे जो कमजोर कड़ी होती है, वह।

'द स्ट्रेन्ग्थ ऑफ अ चैन लाईज इन इट्स वीकेस्ट लिन्क'

और यह 'वीकेस्ट लिन्क' थी, जिनको हम अछुत कहते वह। जिसका हम स्पर्श भी नहीं करते थे। जिसके स्पर्श से हम अपने को अपवित्र मानते थे। तालाब पर पानी नहीं पीने देते थे। जिस तालाब में कुत्ते और सुअर भी पानी पीते थे। लेकिन आदमी को पानी नहीं पीने देते थे। मंदिर में नहीं जाने देते थे। फिर भी वे रहे अपने साथ में। उनको समाजगौरव प्राप्त हो इसलिये १९६९ में उडुपी में कहा **'न हिन्दूः पतितो भवेत्' 'हिन्दवः सोदराः सर्वे'** एक क्रान्ति हो गई। और इस क्रान्ति का फल भी निकला। एक शंकराचार्य ने डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के पुतले को माल्यार्पण किया। कल्पना कर सकते है? और क्रान्ति का दूसरा उदाहरण है। काशी में विश्व हिन्दू परिषद की धर्मसंसद हुई तो डोमराजा के यहाँ जिसका काम था प्रेतों को नदी में बहाना, उस डोमराजा के यहाँ सब संत महात्माओं ने भोजन किया। साध्वी ऋतंभरा एक

बार नागपुर में आई तो उसका भोजन एक बड़े अच्छे परिवार में हुआ। लेकिन उसकी जाति बाल्मीकी यानी भंगी थी। उसके यहाँ पर भोजन किया। कहता हूँ अन्वय और व्यतिरेक दोनों दृष्टि से गुरुजी का यह श्रेय है।

गुरुजी की एक और विशेषता थी, संघ की भी है। गुरुजी ने उसे अधिक प्रभावी रीति से प्रकट किया है, वह यानी हिन्दू समाज में विजय की इच्छा उत्पन्न की। विजिगीषुता हम भूल गये थे। विजय को हम भूल गये थे। पता नहीं क्यों? रघुवंश में राजाओं का जो वर्णन किया है। उसकी प्रस्तावना का एक विशेषण मैंने बताया था। **'यथापराधदंडानाम्'।** दूसरा भी है **'यशसे विजिगीषुणाम्'** जीतने की इच्छा रखनेवाले। हममें से जीतने की इच्छा ही चली गई थी। हम बचाव करते थे अपना। शत्रु का स्वरूप क्या है वह नहीं जानते थे। संघ शिक्षा वर्ग में गुरुजी के 'शिव साम्राज्य दिनोत्सव' के भाषण किसी ने सुने है या नहीं मालूम नहीं, लेकिन मैंने सुने हैं। शिवाजी की महिमा इसलिए गाते थे क्योंकि वह विजयी थे। वह यह भी कहते थे कि हमारे सारे अवतार विजयी पुरूष थे। भगवान कृष्ण विजयी थे, परशुराम विजयी थे, राम विजयी थे और विजय पाने के लिए जो जो आवश्यक है वह करना पड़ता है। शत्रु कैसा है वह देखकर करना पड़ता है। भगवान कृष्ण का उदाहरण स्पष्ट है। कर्ण और अर्जुन की लड़ाई चल रही है। और कर्ण के रथ का चक्र जमीन में धस गया। कर्ण निचे उतर आता है और धनुष्य बाण रथ में रखता है और अर्जुन से कहता है कि देखो मैं निःशस्त्र हूँ। और धर्मयुद्ध का नियम है कि शस्त्रधारी को निःशस्त्र पर शस्त्र नहीं चलाना चाहिए। मैं तुमसे डरता नहीं हूँ, ना ही कृष्ण से डरता हूँ। मुझे जरा चक्र निकालने दो और बाद में लड़ई शुरू करो। और अर्जुन थम गया। किन्तु भगवान कृष्ण कहते हैं अर्जुन को कि शस्त्र चलाओ। धर्म की चर्चा करने का इसको कोई अधिकार नहीं है। दुष्ट लोगों को, जब वे संकट में पड़ते हैं तब धर्म का स्मरण होता है। कर्ण से प्रश्न पूछते है कि धर्म का आज आपको स्मरण आया? धर्मयुद्ध का नियम मालूम नहीं था आपको कि एक के विरुद्ध एक लड़ना चाहिए? तुमने अनेकों ने मिलकर अभिमन्यु की हत्या की - **'क्व ते धर्मस्तदा गतः।'** तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? एकवस्त्रा द्रौपदी को आप कौरव सभा में खींच कर लाये और उसको निर्वस्त्र करने का प्रयास किया, **'क्व ते धर्मस्तदा गतः।'** तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? कर्ण के पास कोई उत्तर नहीं था। कृष्ण ने अर्जुन को कहा बाण चलाओ उस पर। इसको धर्म की चर्चा करने का कोई अधिकार नहीं है। तभी अर्जुन विजयी हुआ।

हम विजय का महत्व भूलते गये। पृथ्वीराज चौहान भूल गये। शत्रु हाथ में आ गया, छोड़ दिया। शिवाजी ने नहीं छोड़ा। पृथ्वीराज चौहान भूल गया था कि गोरी क्यों आया था, और अपने हाथ में आया तो छोड़ दिया। और गोरी के हाथ में जब पृथ्वीराज आ गया तो उसको छोड़ा नहीं। पहले अंधा किया और बाद में उसकी हत्या कर दी। अलाउद्दीन खिलजी का उदाहरण हैं। अलाउद्दीन खिलजी चितौड़ में आया था। एक बेशरम माँग लेकर आया था कि, पद्मिनी बहुत सुंदर है अर्पण कर दो। राजपूत देने के लिए तैयार नहीं थे। कई महिनों तक घेरा बंदी चली। नहीं दिया तो फिर चालाकी की। कहा कि पद्मिनी नहीं चाहिए उसके रूप सौंदर्य की प्रशंसा सुनी है तो उसे देखना केवल चाहते हैं। राजपूतों ने कहा कि नहीं, देख भी नहीं सकेंगे। तो फिर और निचे आ गया कि नहीं, नहीं, उसको देखना भी नहीं चाहते, दर्पण में उसका रूप

देखना चाहते हैं। आप चितौड़ जाएँगे तो बताएँगे कि अलाउद्दीन कहाँ बैठा था। उसके पतिराज कहाँ बैठे थे। और पद्मिनी कहाँ से आयी, दर्पण कहाँ था सारा बताएँगे। और यह सारे विचारविमर्श में, कई दिन चले गये। अलाउद्दीन के दूत आते गये। राजपूतों के दूत अलाउद्दीन की छावनी में जाते रहे। और अलाउद्दीन के दूत केवल बातचीत के लिए नहीं आते थे। किला कमजोर कहाँ है वह देख के भी जाते थे। और फिर समझौता हो गया दो 'मित्रों' का ! और अलाउद्दीन साहब आ गये। बैठे और पद्मिनी उधर से आई। दर्पण में उसका रूप देखा। बड़ी मित्रता हो गई। पद्मिनी के पतिदेव, मित्र बने अलाउद्दीन को पहुँचाने के लिये उसकी छावनी में गये। अलाउद्दीन ने उसको छोड़ा नहीं। पकड़ कर रखा। पद्मिनी जब आएगी तब आपको छोड़ेंगे। याने लड़ाई हुई, किले का सारा भेद मालूम हो गया था। जो कमजोर हिस्सा था वहाँ हमला हुआ और राजपूत हार गये। किन्तु पद्मिनी उनके हाथ नहीं आई। कहते है कि सत्रह सौ या सत्रह हजार महिलाओं ने जौहार किया, यानी अग्नि में अपना बलिदान कर दिया। बलिदान की तो हम प्रशंसा करते हैं।

लेकिन अलाउद्दीन क्यों आया था दिल्ली से चितोड़ तक इसको राजपूत भूल गये। शिवाजी भूले नहीं। अफज़लखान बीजापूर से शिवाजी को जिंदा या मुर्दा हाजिर करता हूँ यह प्रतिज्ञा करके चला। शिवाजी प्रतापगढ़ की झाड़ी में, पहाड़ी में बैठे थे, उनको नीचे मैदान में लाना यह अफज़लखान का मकसद था। तो महाराष्ट्र के जो पवित्रतम मंदिर है पंढरपुर का उसको भ्रष्ट किया। शिवाजी आगे आये नहीं। अफज़लखान को लगा कि उसको गुस्सा आ जायेगा। शिवाजी की आलोचना अवश्य हुई होगी कि यह कैसी हिन्दुत्व की बात करता है, और अपने मंदिर की भी रक्षा नहीं कर पाता। शिवाजी गया ही नहीं। शिवाजी और चिढ़ाने के लिये शिवाजी की जो कुलदेवता है तुलजापुर की भवानी उसको भ्रष्ट किया। तब भी शिवाजी नहीं आया। शिवाजी की कितनी आलोचना हुई होगी इसकी आप कल्पना कर सकते हैं। अपने कुलदेवता का रक्षण नहीं कर सकते। अच्छा था उस समय अखबार नहीं थे। लेकिन अंततः शिवाजी यह चाहते थे कि वह यहाँ आ जाये। तो शिवाजी ने भी नाटक किया कि मैं डरा हूँ। और खान समझ गया कि सचमुच शिवाजी डर गया है। सेना किले की तलहटी में रखी। फिर अंगरक्षक लेकर आया। फिर भी कहा कि शिवाजी और आप अकेले में मिलेंगे। और शिवाजी मिले। गुरुजी बता रहे हैं कि शिवाजी और अफज़ल का आलिंगन हुआ। शिवाजी के वाघ नख पहले उसके पेट में गये। कुछ लेखक लिखते हैं कि अफज़लखान ने पहला वार किया और आत्मरक्षा के लिये शिवाजी ने वाघ नख चलाये। गुरुजी का भाषण मुझे स्मरण है। उन्होंने कहा था, 'शिवाजी को इन्डियन पिनल कोड का डर था क्या? सेल्फ डिफेन्स में वह चलाये?' शिवाजी ने स्वयं मान्य किया है कि उसने पहले बाघ नख घुसाएं। अफज़लखान, दिलेरखान सब पराजित हो गये तो मिर्जा राजा जयसिंग को औरंगजेब ने भेजा। शिवाजी का बंदोबस्त करने के लिये। तो शिवाजी ने मिर्जा राजा जयसिंग को जो पत्र लिखा वह इतिहास में प्रसिद्ध है। शिवाजी ने कहा मैं आपसे एकांत में मिलना चाहता हूँ। और कहा, कि एकांत में मिलने का मतलब अफज़लखान वाली बात सोचकर डरें नहीं। यह ध्यान में रखें कि मैं पहला वार नहीं करता तो यह पत्र आपको कौन लिखता। शिवाजी वह भूले नहीं जो अफज़लखान की प्रतिज्ञा थी कि शिवाजी को जिंदा या मुर्दा हाजिर करता हूँ वे भूले नहीं। इसलिये शिवाजी छत्रपति बन सके। एक मुसलमान स्त्री को एक सरदार ने शिवाजी के सामने लाया। शिवाजी ने बड़े सम्मान से उसको भेज दिया। तो

गुरुजी पूछते थे कि तुम और हम वहाँ रहते तो शिवाजी जो बर्ताव किया उससे अलग बर्ताव करते? जो अपने को हिन्दू कहता है उसके लिए, पर स्त्री माता के समान होती है। 'मातृवत् परदारेषु' यह हमारी हजारों साल से सनातन शिक्षा है। क्या शिवाजी उसका अपमान करता? उसको क्या अपने जनानखाने में रखता? तो जो सामान्य व्यक्ति कर सकता था, वह शिवाजी ने किया। एक मामुली हिन्दू आदमी जिस प्रकार बर्ताव करता है उस प्रकार का बर्ताव किया। उससे विपरीत बर्ताव करता तो वह अहिन्दू बर्ताव हो जाता। शिवाजी की महत्ता यह है कि जब सब हारते थे, पराभूत होते थे वहाँ वे विजयी हो कर रहे। हमारी विजय की इच्छा ही समाप्त हो गई है। अभी मैंने एक किताब पढ़ी। अभी याने दो-तीन साल पहले। सबको पढ़ना चाहिये। किताब इन्दिरा गांधी के बारे में है। 'इन्दिरा गांधी, इमरजन्सी एन्ड इन्डियन डेमोक्रेसी' उसका नाम है। लेखक है पी.एन.धर। जो इन्दिरा गांधी के प्रधान सचिव थे। १९७१ में हम जीते थे। पाकिस्तान टूट गया था। पाकिस्तान के ९२,००० सैनिक हमारी कैद में थे। धर लिखते हैं कि सिमले में भुट्टो का बर्ताव ऐसा रहा था कि मानो उसने ही लड़ाई जीती है। और हमारे लोगों पर एक तरह यह दबाव रहता था कि हम विक्टोरियस हैं लेकिन हमारी विक्टरी का उनको कष्ट नहीं होना चाहिए। मेरे मन में आया कि सचमूच हम हार जाते और हमारे ९२,००० सैनिक पाकिस्तान के कब्जे आ जाते तो पाकिस्तान का बर्ताव कैसा होता? धर लिखते हैं कि ऐसा लगता है कि हिन्दू का ऐसा मानस है कि वे विजय से बेचैन होते हैं। पी.एन.धर का वाक्य हैं 'The Indian team did not seem very comfortable with the fact of having won the war...perhaps our collective historical experience makes us feel more at home with setbacks" Why Should we be uncomfortable with victory?' विजय का हमको संकोच क्यों होना चाहिए? विजय से हमें क्यों बेचैन होना चाहिए? यह जो मानसिकता हिन्दू समाज की है, उसको बदलने का काम संघ ने किया और संघ के द्वारा ३३ वर्षों तक जो गुरुजी संघ के सरसंघचालक रहे वह गुरुजी ने किया। यह विजय का संदेश है। कल मैंने बताया कि जब सत्याग्रह का उन्होंने संदेश दिया तब कहा कि हमारी विजय निश्चित है क्योंकि भगवान हमारे साथ है। हमारे साथ सत्य है और सत्य की विजय होती है।

ज्यू लोगों पर, जीसस को वधस्तंभ पर चढ़ने का आरोप था। ईसाईयों ने उनको उनकी मातृभूमि से भगाया था। बाद में मुसलमानों ने भगाया। अनेक देशों में वे रहे। महाराष्ट्र में थे, मराठी बोलने लगे थे। रूस में गये रूस के हो गये। आईन्स्टाईन वगेरे ज्यू (यहूदी) थे। जर्मनी में गये, जर्मनी के हो गये। इंग्लैंड में गये, इंग्लैंड के हो गये। अमेरिका में गए, अमेरिका के हो गये। वे करीब अठारह सौ वर्षों से अपने भूसि से कट गये थे। लेकिन हर शुक्रवार को साइलेगोग में, उनके प्रार्थना मंदिर में प्रार्थना करते थे कि Next Year in Jerusalem अगले साल जेरूसलम पहुँचेंगे। १८०० साल तक कितनी पिढ़ियाँ निकल गई होंगी। वे जेरूसलम भूले नहीं थे। और १९४८ में जब इजराइल बन गया। तब उनको जेरूसलम नहीं मिला था। जेरूसलम १९६७ की लड़ाई में मिला। और जेरूसलम में इनका क्या था? कुछ नहीं। ईसीइओं का चर्च है, अल-अक्सा मस्जिद है। इनकी एक दीवार थी, टूटी हुई दीवीर 'वेलींग वॉल'। उसका नाम शोक दीवार है। वह कोई नहीं गिरा सकता ऐसी उनकी भावना है, क्योंकि वह पानी से नहीं बनी। आँसुओं से बनी है। क्या आँसुओं से दीवार बनती है? और जब उस दीवार

पर पहली इज़राइली टुकड़ी पहुँची तब उनके आनंद का वर्णन हम लोगों ने अमरिका के मेगेजिन में पढ़ा, हम रोमांचित हो गये।

सोचने की बात है कि १८०० साल तक उन्होंने याद रखा कि वह देश हमारा है। पहली लडाई के बाद में इंग्लैंड और अमेरिका ने कबूल किया था कि आपको पेलेस्टाइन में जगह देंगे। उस समय पेलेस्टाइन तुर्की साम्राज्य का हिस्सा था। किन्तु युद्ध के बाद में 'इन्टरनेशनल प्रायोरिटी' में परिवर्तन आ गया और कहा कि नहीं आपको हम यहाँ जगह नहीं देंगे। अफ्रिका में हम उससे दुगनी जगह देंगे। यहुदियों ने कहा अफ्रिका में हमें क्या काम है ? हम जमीन के लिये झगड़ रहे हैं क्या ? हमारी मातृभूमि है वह, वहाँ से हमें भगाया गया है। वहाँ जाना चाहते हैं हम। वहाँ बहुत संकट के कारण थे। लेकिन यहुदी वहाँ गये। अपनी मातृभूमि को नहीं भूले। हम ५५ साल में
भूल गये। क्योंकि विजिगीषा ही नहीं है। जीतने की इच्छा ही नहीं है। पराभव के साथ समझौता करने की वृत्ति है। ज्यादा से ज्यादा गौरव होता है शहादत का। हुतात्माओं का। डरपोक लोगों से तो हुतात्मा अच्छे ही है। लेकिन हुतात्मा क्या होता है ? हुतात्मा तो ऐसा होता है कि जैसे आकाश में बिजली चमकती है। बहुत उसका प्रकाश होता है। आँखें चकाचौंध हो जाती है। आँखें बंद हो जाती हैं। लेकिन बादमें अँधेरा और गहरा हो जाता है। विजय, दीपस्तंभ के समान होता है। सदा प्रकाश देने वाला। उस विजय की कामना करनी चाहिये। यह गुरुजी ने बहुत आग्रह से बताया है। यह उनकी एक विशेषता है। उनका मूलभूत चिंतन रहता था। अपना संविधान बना। संविधान में कहा था India that is Bharat, shall be a union of states यानी मूलभूत क्या है ? भारत या राज्य ? भारत एक है कि सब जो राज्य हैं, उनका यह फेडरेशन है, संघ है ? भारत की एकता को ही हमने गौरवस्थान दिया है। शंकराचार्य भारत को एक देश मानते थे। इसलिए वे केरल में जन्मे किन्तु चारो दिशाओं में अपने मठों की स्थापना की। बहुत पुरानी परम्परा है अपनी। गंगा के जल से रामेश्वर में अभिषेक होता है। स्नान के समय सब नदियों का हम स्मरण करते है। वाल्मिकि के राम को यह सारी भूमि अपनी भूमि लगती थी। जब वाली को राम ने मारा तो वाली पूछता है 'तुमने मुझे क्यों मारा? मैंने तुम्हारा कौनसा अपराध किया था? ' वाल्मिकि के राम का उत्तर है
इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहाष्वपि।।
यह सब भूमि, पर्वत, वन, उपवन मिलाकर, इक्ष्वाकू राजाओं की है। और पशु, पक्षी या मानव गलत व्यवहार करें तो उनको दण्ड देना और अच्छा व्यवहार करें तो उन्हें पुरस्कृत करना हमारा दायित्व है। हम भूल गये है कि यह एक देश है। राज्य की व्यवस्था के लिए भाग बनने चाहियें। भारत एक बड़ा देश है। उसके अनेक प्रांत बनने चाहिये। लेकिन देश एक, उसका शासन एक, उसकी पार्लामेन्ट एक। कानून एक रहेगा। सबके प्रतिनिधि रहेंगे। यह अभी मान्य नहीं हुआ है। समय लगेगा, पर करना पड़ेगा। आज नहीं तो कल करना पड़ेगा। श्री गुरुजी की एक ऐसी विशेष दृष्टी रहती थी।

दत्तोपंत ठेंगडी, संघ के प्रचारक हैं। भारतीय मजदूर संघ में गये। कल बताया था कि वर्गविग्रह पर जो विश्वास करता नहीं वह कामगारों की संगठना नहीं बना सकता, ऐसी धरणा थी। पर

संगठन बना। एक बार नागपुर में मिल में हड़ताल हो गई। कहा कि 'बायलेटरल निगोशियेशन' चलेंगे। गुरुजी के पास ऐसी बैठक में अनेक लोग आते थे, बैठते थे। तो उसमें बात चली। गुरुजी ने कहा बायलेटरल कैसे ? एक कपड़ा बनाने की मिल है, कारखाना है, उसमें मजदूर है, ठीक है, मालिक है ठीक है, लेकिन कपड़ा क्या मालिक और मजदूर ही पहनते है ? 'बायलेटरल नहीं होगा' जनता भी रहेगी। जनता का भी प्रतिनिधि रहेगा। यह 'मल्टीलेटरल निगोशियेशन' होने चाहिये। एक अलग दृष्टि, विशेष दृष्टि।

एक बार हम ऐसे ही बैठे थे १९५२ में। और गौहत्या के विरोध में आंदोलन चला, पुराने लोग जानते हैं हमने हस्ताक्षर संग्रह किया था। उस समय बहुत गौभक्त लोगों का कार्यालय में आना जाना रहता था। गुरुजी की बैठक का वर्णन करना हो तो रात को ९ बजे गुरुजी वहाँ आते थे और रात के बारह बजे तक बैठते थे। सबको आने की अनुमति रहती थी। हम भी वहाँ जा कर बैठते थे। जैसे बारह बजते थे हमारे कृष्णराव मोहरील खड़े होते और खिड़कियाँ बंद करने लगते थे। तब गुरुजी कहते थे कि अब कृष्णराव मोहरील का डंडा चल रहा है। चलिए, जाइए, तब हम उठते थे। तब वहाँ वे पत्र भी लिखते थे, विनोद भी करते थे, और बातें भी चलती थी। उस समय आए एक गौभक्त ने गुरुजी से कहा आप ऐसा एक आदेश निकालो कि संघ में स्वयंसेवकों का जो परिवार है वह डालडा का प्रयोग नहीं करेगा। उस समय डालडा नया नया था। आज जैसा प्रचलन नहीं था। गुरुजी ने उनको कहा कि संघ में आदेश देने की पद्धति नहीं है। तो वे समझ नहीं पाये। थोड़ा आवाज चढ़ाकर बोले, जहाँ जहाँ मैं जाता हूँ, वहाँ वहाँ लोग कहते हैं गुरुजी का आदेश होगा, संघ का आदेश होगा तो हम करेंगे। और आप कहते है संघ में आदेश ही नहीं होता? तो गुरुजी ने उनको समझाया कि हमारे पास में आदेश देने की कौनसी शक्ति है? एक अंग्रेजी शब्द का प्रयोग किया। हमारे पास में कौन सा सेंक्शन है। हमने आदेश निकाला और किसीने नहीं माना तो हम उसको कौन सी सजा दे सकते है? तो हमारे संघ में यह आदेश देने की कोई पद्धति नहीं है। तो उन्होंने पूछा कि संघ में 'डिसीप्लिन' क्यों है, अगर आदेश देने की पद्धति नहीं है तो इतना अनुशासन क्यों है संघ में? तो गुरुजी ने कहा हमारे संघ स्थान हैं ना, वहाँ पर हम कार्यक्रम करते हैं। अपने ढंग से करते हैं। उसीसे अनुशासन पैदा हो जाता है। उसने आगे नहीं पूछा।

मुझे एक विदेशी पत्रकार ने भी पूछा था कि संघ में जो डिसीप्लिन है उसका कारण क्या है? मैंने कहा कि उसका कारण यह है कि हमारे यहाँ किसी पर भी डिसीप्लिनरी एक्शन नहीं लिया जाता। उसको कितना समझ में आया वह पता नहीं है। लेकिन मैं आपको बता देता हूँ कि 'पोलिटिकल पार्टीज्' में डिसीप्लिनरी एक्शन लेते हैं। फिर छह महिने के अंदर उसे वापस ले लेते हैं यह बात दूसरी है। संघ में कोई 'डिसिप्लिनरी एक्शन' नहीं है।

कुछ लोग कहते थे कि गुरुजी ने कुछ सिद्धियाँ अर्जित की हैं। लेकिन उन्होंने कभी इसका जिक्र नहीं किया। मुझे लगता है कि वे अपने को भौतिक शरीर से अलग कर सकते थे। एक बार शायद १९५२ की बात है उनके हाथ में बहुत पीड़ा थी। किसीने उनको सुझाव दिया कि उसे चाँदी की शलाका से दागना चाहिए। बत्तीस दिन तक वह शरीर दागा गया। वहाँ के कार्यकर्ता ने बताया कि दागते समय चमड़े का चर्रर करके आवाज आता था। हमारे बदन पर

रोमांच उठता था, गुरुजी हँसते थे। एक बार उनको बिच्छू काटा था। किन्तु बिच्छू काटने के बाद वह पढ़ते रहे। किसीने पूछा कि आपको बिच्छू ने काटा है ना? तो बोले बिच्छू तो पाँव में काटा है, मस्तिष्क को तो नहीं काटा है। पढ़ने का काम तो मैं मस्तिष्क से करता हूँ। यानी शरीर से कोई स्थितप्रज्ञ ही अलग हो सकता है। कोई योगी ही अलग हो सकता है, वैसे वे योगी थे। एक बार एक कार्यक्रम था। इतनी ज्यादा मिर्च की चटनी थी, केवल मिर्च की, धनियाँ वगेरे कुछ नहीं उसमें। गुरुजी की थाली में वह डाल दी गयी। भोजन के समय गुरुजी थाली में कुछ छोड़ते नहीं थे। मैं देख रहा था। गुरुजी ने उसको पूरा का पूरा उठाया। आखिर में निगल डाला, पानी पिया, और हाथ धोने के लिये चले गये। कोई वेदना नहीं, चेहरे पर वेदना का कोई चिन्ह ही नहीं। उनको केन्सर था। उसका आपरेशन हो गया। उनके डॉक्टरने कहा कि एक विचित्र बीमार मैंने देखा, वह हँसता है। केन्सर की बीमारी में मैंने एक महात्मा को देखा है वह रोते थे। पशु जैसे रोते थे। और गुरुजी को देखो आखिर के दिन भी, प्रार्थना की। कुर्सी पर बैठकर प्रार्थना की। उनको मृत्यु के समय सुलाया नहीं गया था। कुर्सी पर बैठे रहे, टेबल पर मस्तक टिका हुआ था। प्राण जाने के बाद हमने उनको सुलाया। तो यह एक महापुरुष थे और हमारा बड़ा भाग्य है कि वे हमारे सरसंघचालक रहे। मैं ५ जून १९७३ में उनका जो अंतिम समय हुआ उसका वर्णन आपको सुनाता हूँ। वह लिखा है, आज जो हमारे प्रधान मंत्री हैं उन्होंने। और यहीं आज का भाषण समाप्त करता हूँ। श्री अटलबिहारी लिखते है।

५ जून १९७३

सबेरे का समय। चाय पान का वक्त। पूजनीय श्री गुरुजी के कमरे में, उसे कोठरी कहना ही अधिक उपयुक्त होगा, जब हम लोग प्रविष्ट हुये तो वह कुर्सी पर बैठे हुए थे। पांच जून को शाम को ९ बजे उनका देहांत हो गया और यह सुबह की बात है। चरण स्पर्श के लिये हाथ बढ़ाया। सदैव के भाति पाँव खींच लिये। मेरे साथ आये हुए स्वयंसेवकों का परिचय हुआ। उसमें आदिलाबाद के एक डॉक्टर थे। (डॉक्टर वझे। जनसंघ के अच्छे कार्यकर्ता थे।) श्री गुरुजी विनोद वार्ता सुनाने लगे कि एक मरीज एक डॉक्टर के पास गया। डॉक्टर ने पूछा क्या कष्ट है? सारी कहानी सुनाओ, तो मरीज बिगड़ गया और बोला मुझे ही अपना रोग बताना है तो आप निदान क्या करेंगे? बिना बताये जो बीमारी समझे ऐसा डॉक्टर मुझे चाहिये। डॉक्टर एक क्षण चुप रहे। फिर बोले ठहरो तुम्हारे लिये एक दूसरा डॉक्टर बुलाता हूँ। जो डॉक्टर आया वह जानवरों का डॉक्टर आया। बिना कुछ कहे सब कुछ समझ लेता था। कथा सुनकर हँसी का फवारा फूट पड़ा। वह मृत्यु के दिन की बात है। रात्रि भर के जागरण की थकान पलभर में दूर हो गई। अटलजी आगे कहते है 'श्री गुरुजी स्वयं हँसी में शामिल हो गये। फिर और एक किस्सा सुनाया और हँसते हँसते पेट में बल पड़ गये। इतने में चाय आ गई। सबको मिली या नहीं उसकी चिंता श्री गुरुजी स्वयं कर रहे थे। कौन चाय नहीं पी रहा किसको दूध की आवश्यकता है, इसका उनका बड़ा ध्यान रहता था। सब के बाद स्वयं चाय ली। कप में नाम मात्र की चाय थी। उन्होंने उसे और कम करवाया। शायद हमारा साथ देने के लिये ही वह चाय पान कर रहे थे। निगलनेमें बड़ा कष्ट था। साँस लेने में अत्याधिक पीड़ थी। किन्तु चेहरे पर वही थी मुक्त, मोहिनी मुस्कान। हृदय हृदय को हसानेवाला हास्य। मुर्झाई मन की कली कली को खिलाने वाली खिलखिलाहट। निराशा, हताशा और दुराशा को दूर भगाने वाला

दुर्दम्य आत्म विश्वास। कमरे के किसी कोने में मौत खड़ी थी। शरीर छूट रहा था। एक एक कर सभी बंधन टूट रहे थे। महामुक्ति का मंगलमुहूर्त निकट था। एक क्षण के लिये मुझे लगा, शूलों की शैय्या पर भीष्म पितामह मृत्यु की बाट जोह रहे थे। इच्छा मरण सुना भर था। आज आँखों से देख लिया।'

६ जून १९७३ – हेडगेवार भवन

"एक दिन में कितना अंतर हो गया। कल सब शांत था। आज शोक का निस्तब्ध चीत्कार हृदय को चीर रहा था। कल सब अपने काम में लगे थे। आज जैसे सब कुछ खोकर खाली हाथ खड़े थे। आँखों में पानी, हृदयों में हाहाकार, कभी न भरने वाला घाव, कभी न मिटनेवाला दर्द। पूजनीय गुरुजी का पार्थिव शरीर दर्शन के लिये कार्यालय के कमरे में रखा गया। आज उन्होंने मुझे चरण स्पर्श करने से नहीं रोका। अपने पाँव पिछे नहीं हटाये। सिर पर प्रेम से हाथ नहीं फेरा। प्यार भरी मुस्कान से नहीं देखा। हालचाल नहीं पूछा। वे अनंत निद्रा में निमग्न थे। हंस उड़ चुका था। काया के पिंजरे को तोड़ कर पूर्ण में विलीन हो चुका था। गुरुजी नहीं रहे। उनका विराट व्यक्तित्व छोटी सी काया में कब तक कैद रहता। जीवनभर तिल तिल जलकर लाखों जीवनों को आलोकित, प्रकाशित करने वाला तेजः पुंज मुठ्ठी भर हाड़ माँस के शरीर में कब तक सीमित रहता। लेकिन गुरुजी हमेशा रहेंगे। हमारे जीवन में, हमारे हृदयों में, हमारे कार्यों में। अग्नि उनके शरीर को निगल सकती है। हृदय हृदय में उनके द्वारा प्रदीप्त प्रखर राष्ट्र प्रेम तथा निःस्वार्थ समाज सेवा की चिनगारी को कोई नहीं बुझा सकता। गुरुजी के द्वारा जो राष्ट्र प्रेम और निःस्वार्थ समाज सेवा की जो चिनगारी है, उसको कोई बुझा नहीं सकता।" गुरुजी के स्मरण को श्रद्धांजली अर्पण करके मैं समाप्त करता हूँ।